प्रकाशक,
उदयलाल काशलीवाल,
मालिक हिन्दी-पुस्तक भंडार;
कालबादेवी-बम्बई ।

मुद्रक,
चिंतामण सखाराम देवळे,
'मुंबईवैभव प्रेस,' सर्व्हंट्स् ऑफ इंडिया
सोसायटीज् होम्, सँढर्स्ट रोड,
गिरगाँव-बम्बई ।

भूमिका ।

सर आर्थर हेल्पसका स्थान अँगरेजीके गद्य-लेखकोंमें बहुत ऊँचा है। आपकी ओजस्विनी भाषा और गम्भीर भाव बड़े ही मधुर और हृदय-ग्राही हैं। लेखमालाके अतिरिक्त आपने और भी बीसों ग्रंथ लिखे हैं। जिनमेंसे दो चार ग्रंथ अब भी बडे भावसे पढ़े जाते हैं। समाज-सुधारकी ओर ही इन ग्रंथोंका विशेष झुकाव है। जिन कु-प्रथाओंके संस्कारोंको लक्ष्यमें रख कर ये लिखे गये थे बहुत समय हुआ इंग्लिस्तानमें सम्पन्न हो चुके हैं। इसी लिए इन ग्रंथोंका महत्त्व अब उतना नहीं जितना प्रथम संस्करणके समयमें था। सामयिक पुस्तकोंका जीवन बहुधा स्वल्प ही होता है। हेल्प्स साहबके अन्यान्य ग्रंथ पूरे सौ साल तक चुस्तीके साथ जीवन-यापन करते हुए यदि अब भी मृतप्रायः नहीं हुए हैं तो कहना चाहिए कि उनके लेखकने साहित्य-संसारमें असाधारण कीर्ति प्राप्त की है।

हेल्प्स साहबकी 'लेखमाला,' जिसे आपने अपने अवकाशके समयमें लिखा है, अँगरेजी साहित्यके 'रत्नों' में गिनी जाती है। इस देशके विश्व-विद्यालय बहुधा इसे बी० ए० अथवा एम० ए० की पाठ्य पुस्तकोंमें सम्मिलित करते हैं। ग्रंथके महत्त्वका कारण उसकी भाषा और भावोंके सिवाय उसका विषय भी है। व्यवहार-कुशलताको सिखलानेवाले ग्रंथ प्रत्येक भाषाके साहित्य-भंडारमें इने-गिने ही रहते हैं। तिस पर भी इस ग्रंथमें

विशेषता यह कि लेखक स्वयं एक चतुर व्यावहारिक व्यक्ति थे । अपने अनुभवके द्वारा सिद्ध किये हुए चतुराईके नुसखे यदि सरल, कर्ण. और गहन-भाषाकी चाशनी द्वारा प्रयोग किये जायँ तो पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि ग्रंथका आसन कितना ऊँचा हो जाता है । पुस्तकको पढ़नेसे विदित हो जायगा कि गृहस्थके दैनिक व्यवहारमें आने योग्य प्रत्येक विषय पर साहबने उत्तम आलोचना की है ।

सर आर्थरका जन्म सन् १८१३ की १० जुलाईको हुआ था । आपके पिता एक प्रसिद्ध व्यापारी थे । कैंब्रिज-विश्वविद्यालयमें शिक्षाका शेष करके साहबने राज्य-विभागमें कई उच्च पद प्राप्त किये । सन् १८६० में आप प्रिवी कौंसिलके क्लार्क बनाये गये । महत्त्व-पूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित रह कर भी साहित्य-सेवाको अपने जीवनका कर्तव्य समझ मरते मरते तक आप पुस्तकें लिखते रहे । सन् १८७५ में ६२ सालकी उमरमें आपने अपनी ऐहिक लीलाको पूर्ण किया ।

बाईस वर्षकी उमरसे लेकर मरते मरते तक साहबने छोटे बड़े प्रायः २० ग्रंथ लिखे । इनमें पाँच या सात नाटक थे । राजनीतिक विषयोंकी दो पुस्तकें लिखीं । आपकी शेष पुस्तकें उपन्यास और गल्पोंके रूपमें हैं । इनमें बहुधा सामाजिक रूढ़ियोंकी तीक्ष्ण आलोचना है । आपके ग्रंथों द्वारा विलायती समाजका जो सुधार हुआ उसके लिए अँगरेज लोग आपके बड़े आभारी हैं ।

पुस्तकके अनुवादके विषयमें थोड़ासा लिख देना बस होगा । हिन्दीसाहित्यकी वृद्धिके लिए अनेकानेक विषयोंकी पुस्तकोंका लिखा जाना आवश्यक है । अनुवादोंका नाम सुन कर कई लोग नाक सिकोड़ लेते हैं । परन्तु सच पूछो तो यह उपाय जितना हानिकारक है उतना ही लाभ-प्रद भी है । अन्यान्य भाषाओंके साहित्यमें जो जो पुस्तकें विद्यमान हैं उनका स्वतंत्र लिखनेकी अपेक्षा अनुवाद करना ही उत्तम है । वर्तमान शिक्षा-

पद्धतिकी पुस्तकोंको केवल रटलेनेवाले नवयुवकोंके हृदय पर व्यावहारिक चातुर्यके महत्त्वको अङ्कित कर देनेवाली व्यवहार-नीतिकी पुस्तकोंका हिन्दीमें प्राय अभाव ही है। उसीकी आंशिक पूर्तिके लिए यह परिश्रम किया गया है।

मूल लेखकके विचारोंको जिस प्रकार बने उसी प्रकार समझा देना यही इस अनुवादका ध्येय रक्खा गया है। इसी लिए अनुवादको स्वतन्त्र बनानेकी तथा कहीं कहीं विषयको परिवर्धित करनेकी भी आवश्यकता प्रतीत हुई है। मूल लेखकके भावोंकी विलायतीयताके स्थानमें भारतीय भावोंका भी यत्र तत्र समावेश किया गया है। भाषा सरल और सर्व-साधारणकी समझमें आने योग्य लिखी गई है। जिस अभिप्रायसे यह अनुवाद किया गया है उसका कुछ भी अंश यदि पूर्ण हुआ तो लेखक अपना अहोभाग्य मानेगा।

खूबचंद सोधिया।

विषयसूची ।

पहला भाग ।

दूसरा भाग ।

हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला।

आठ आने प्रवेश-फी देकर स्थायी ग्राहक बननेवालोंको इसकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती हैं। नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

१ सफल-गृहस्थ। अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक सर आर्थर हेल्पके निबन्धोंका अनुवाद। इसमें मानसिक शान्तिके उपाय, कार्य-कुशलता, कुटुम्ब-शासन, हृदयकी गंभीरता, संयम, आदि महत्त्व पूर्ण विषयोंका बड़ा सुंदर विवेचन है। कीमत ॥)

२ आरोग्य-दिग्दर्शन। मूल लेखक महात्मा गाँधी। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए बड़ी उपयोगी है। पुस्तकमें हवा, पानी, खुराक, जल-चिकित्सा, मिट्टीके उपचार, छूतके रोग, बच्चोंकी संभाल, सर्प बिच्छू आदिका काटना, डूबना या जलजाना आदि अनेक विषयों पर विवेचन है। तीसरा संस्करण। मू० ॥)

३ कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम। कांग्रेसके जन्मदाता, भारतमें राष्ट्रीय भावोंके उत्पादक, मनुष्य-जातिके परम हितैषी, स्वार्थ-त्यागी महात्मा मि० ह्यूमका यह जीवन-चरित्र प्रत्येक देशभक्तके पढ़ने योग्य है। मूल्य बारह आने।

४ जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश। महात्मा जेम्स एलनकी पुस्तकका सरल-सुन्दर अनुवाद। चरित्र-संगठनमें बड़ी उपयोगी पुस्तक है। मू० ॥)

५ विवेकानन्द (नाटक)। स्वामी विवेकानन्दने अमेरिका जाकर जो हिन्दू-धर्मका प्रचार किया, उसकी महत्ताका वहाँके लोगो पर प्रकाश डाला, इस विषयका इसमें सुन्दर चित्र खींचा गया है। देश-भक्तिकी पवित्र भावनाओंसे यह नाटक भरा हुआ है। पाँच चित्र दिये हैं। मू० १) रु०

६ स्वदेशाभिमान। इसमे कितने ही ऐसे विदेशी रत्न-रत्नोंकी खास खास घटनाओंका उल्लेख है, जिन्होंने अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर संसारके सामने एक उच्च आदर्श खड़ा कर दिया है। मूल्य ।)

७ स्वराज्यकी योग्यता। स्वराज्यके विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जाती है उनका इसमे बड़ी उत्तमताके साथ खण्डन कर इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि भारतको स्वराज्य मिलना ही चाहिए। मू० १।) रु०

८ एकाग्रता और दिव्यशक्ति। इसमें दिव्यशक्ति—आरोग्य, आनन्द, शक्ति और सफलताकी प्राप्तिके सरल उपाय बतलाये गये हैं। मूल पुस्तककी लेखिका लिखती है कि "इसके अध्ययनसे तुम्हें दिव्यशक्ति अर्थात् आकर्षणकी

अद्भुत शक्ति प्राप्त न हो, यदि तुम अपने भीतर एक नव-प्राप्त आनन्दका अनुभव न करने लगो + + + तो मैं कहती हूँ कि मेरा नाम श्री कृष्ण द्वारा नहीं।" मूल्य १), सजि० १।=)

९ जीवन और श्रम। परिश्रम करनेसे घबड़ानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए यह पुस्तक संजीवनी शक्तिकी दाता है। श्रम कितने महत्त्वकी बात है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा। मूल्य डेढ़ रुपया। स० १॥=)

१० प्रफुल्ल (नाटक)। महाकवि गिरीशचन्द्र घोषके बंगला नाटकका हिन्दी अनुवाद। हमारे घरों और समाजमें जो फूट, स्वार्थ, मुकदमेबाजी, ईर्षा-द्वेष आदि अनेक दोषोंने घुस कर उन्हें नरक धाम बना दिया है उनके संशोधनके लिए गिरीश बाबूके सामाजिक नाटकोंका घर घरमें प्रचार होना चाहिए। मूल्य १=)

११ लक्ष्मीबाई (झाँसीकी रानी)। झाँसीकी रानीकी यह जीवनी बड़ी खोजके साथ लिखी गई है। मूल पुस्तकके सम्बन्धमें सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि "केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए।" यह महत्त्व-पूर्ण पुस्तक प्रत्येक स्वाभिमानी भारतवासीको पढ़नी चाहिए। मूल्य १।) रु०

१२ पृथ्वीराज (नाटक)। भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चोहानने गजनीके दुर्दमनीय मुगल-सम्राटको पराजित कर पुण्यभूमि भारतकी रक्षाके लिए जो अपूर्व आत्म बलिदान किया था उसी वीरका वीर-रस-प्रधान चरित्र इसमें चित्रित किया गया है। मू० ॥।)

१३ महात्मा गाँधी। ६ सुन्दर चित्रों-सहित। हिंदी-साहित्यमें यह बहुत बड़ी और अपूर्व पुस्तक है। इसके पहले खण्डमें महात्माजीकी १३२ पृष्ठोंमें विस्तृत जीवनी है। दूसरे खण्डमें महात्माजीके लगभग ८० महत्त्व-पूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका संग्रह है; और उनमें ऐसे व्याख्यान ही बहुत हैं जिन्हें हिंदी-संसारने बहुत कम पढ़ा है। पृष्ठ संख्या लगभग ४७५। मू० ३) रु०।

१४ वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति? नाट्य-सम्राट् महाकवि गिरीश-चंद्र घोषके एक श्रेष्ठ सामाजिक नाटकका अनुवाद। भारतीय आदर्शोंको गिराने-वाले विधवा-विवाहसे होनेवाली दुर्दशाका बड़ा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र इसमे खींचा गया है। मू० ॥।=), सजि० १।-)

१५ आत्मविद्या। वेदान्त विषयका एक अपूर्व और महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ। लेखक, श्रीयुत पं० माधवराव सप्रे बी० ए०। पृष्ठ संख्या ३५०। मू० २) रु०

सफल-गृहस्थ

पहला भाग।

मानसिक शान्ति प्राप्त करनेके उपाय।

मनुष्येके सारे व्यापार दुःखोंकी मात्रा कम करनेके निमित्त ही होते हैं। रोटी बनानेके साधारण कार्यसे लेकर बडेसे बडा परोपकार भी किसी-न-किसी इच्छाकी निवृत्तिके लिए किया जाता है। दुःख शब्द बड़ा व्यापक है। शरीरमें छोटेसे फोडे हो जानेसे लेकर इकलौते पुत्रका मरजाना अथवा राज्य-मुकुट छिन कर मार्गका भिखारी बन जाना—ये सब दुःख ही कहलाते हैं। साधारणतः मनुष्यकी सब पीड़ाओंको हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं–(१) शारीरिक दुःख, (२) मानसिक व्यथायें। वे दुःख, जिनका मुख्यतः शरीरसे सम्बंध है—यथा रोगी हो जाना, चोरी हो जाना इत्यादि—पहले वर्गमें शामिल हैं। चित्तकी चिन्तायें, जो कि सिर्फ शारीरिक चिह्नोंसे पहचानी जा सकती हैं, दूसरे प्रकारके दुःखोंमेंसे हैं। यथार्थमें शारीरिक और मानसिक दुःखोंमें बड़ा घनिष्ट संबंध है। मित्रकी मृत्युसे कितना संताप होता है यह सबको विदित है; परन्तु ऐसा भी प्रायः देखनेमें आता है कि तीव्र चिंताओंके कारण हम असमयमें ही रोग-ग्रसित होकर मृत्युके मुखमें पड़ जाते हैं। यदि हम मनुष्य-जातिके दुःखोंकी ओर ध्यान दें तो विदित होता है कि अधिकांश मनुष्य मानसिक कष्टोंके द्वारा ही दुःख पा रहे हैं। निरोगता तथा आकस्मिक घटनाओंका न होना ये तो थोड़ीसी बुद्धिको

काममें लानेसे और कई प्राकृतिक नियमोंके अनुसार चलनेसे सहज ही प्राप्त हो सकती है; परन्तु मानसिक वेदनाओंसे छुट्टी पाना उतना सरल नहीं है। बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये चिन्तायें, जो चिताकी छोटी बहिनें हैं, अधिकांश हमारी ही मूर्खताके द्वारा जन्म लेती हैं और हमें सताती हैं। लोग इनकी संततिको बढ़ानेमें इतने व्यस्त रहते हैं कि मालूम होता है मानों मनुष्य-जातिको शांतिसे बैठना अच्छा ही नहीं लगता। इस लेखमें हम कुछ ऐसे नुसखे बताना चाहते हैं जिनसे चिन्ता-पीड़ित मनुष्योंको लाभ हो।

जिनको थोड़ा भी अनुभव है वे जानते हैं कि जीवन फूलोंकी शय्या नहीं है। ऐसे मनुष्य, जिनको हम अत्यंत सुखी समझते हैं, यथार्थमें अनेक दुःखोंसे पीड़ित रहते हैं। दुनियाके प्रत्येक व्यापारमें दुःख और सुख दोनोंका जोड़ा है—जीवनका परदा दुःख और सुख दोनोंके तंतुओंसे बना हुआ है, इस बातको प्रत्यक्ष देखते हुए भी हम भूल जाते हैं। हम समझते हैं संसारमें कई चीजें सिर्फ सुखमय ही हैं और कई चीजें सिर्फ दुःखमय ही हैं। ऐसा मान कर हम उन कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं जिनको हमने सुखमय मान रक्खा है। थोड़ी दूर चलने पर विदित होता है कि जिसको हमने नंदनवन मान रक्खा था उसमें तो काँटोंकी झाड़ी भी है। बस फिर हमारी असंतुष्टताका पार नहीं रहता। हम किसी समय अपने तईं, किसी समय उस कार्यको और पश्चात् उस समयको, जब कि हमने उस कार्यमें हाथ डालनेकी ठानी थी, हजारों तरहसे कोसने लगते हैं। इसका उत्तम उदाहरण हेमटन साहबने इस भाँति दिया है—"उस मनुष्यको देखो जो कि जीवनमें घुसते समय किसी उद्योगको चुनता है। उस समय उसकी चित्त-वृत्तियोंको देखो, उसके मनमें विचारोंका कैसा युद्ध होता है। बहुत डरते डरते और बड़ी आनाकानीके बाद मान लो कि वह वका-

लतके धंदेको पसंद करता है । उसे मालूम है कि वकालतमें खूब धन प्राप्त होता है और इस लिए बडा आनंद है, परन्तु मान लो कि कुछ समयके बाद उसका पेशा उतना अच्छा नहीं चलता जितना कि उसने समझ रक्खा था, बस वह अपने तई बहुत धिक्कारता है—हाय हाय मैंने इस धंदेको अङ्गीकार ही क्यों किया । इतना ही नहीं, वह मनमें सोचता है यदि सरकारी नौकरी की होती तो मैं कितने आरामसे रहता, लोग मेरी कैसी इज्जत करते और मैं घोडे पर बैठ कर किस तरह लोगोंकी सलामें प्राप्त करता । लीजिए यह सब मूरता अग्निमें घृत सिंचनके समान हृदयकी अशांतिको और भी धधकाती है । हमें चाहिए कि यदि हम अशान्तिको दूर नहीं कर सकते है तो उसे प्रज्वलित तो न करें । यदि अन्यान्य धंदोंकी अडचनोंका विचार हम योग्य रीतिसे करें तो इतना हम अवश्य निश्चित कर सकते है कि हम अपनी वर्तमान अवस्थासे यदि अधिक सुखी हो सकते है तो यह भी असंभव नहीं है कि उनमें हमें अधिक कष्ट भी प्राप्त हो ” ।

बहुतसे मनुष्य इसी चिन्तामें मग्न रहते है कि जन-साधारणका उनके विषयमें क्या मत है । लोग किसी प्रकार उनकी निन्दा तो नहीं करते । सब उनसे संतुष्ट है या नहीं । इतना ही नहीं, अपने कार्योंकी अच्छी या बुरी समालोचनाको सुन कर इनके मन पर बडा असर पडता है। परन्तु लोक-मतके लिए इतने अधिक चिन्तित रहना अच्छा नहीं है । जो कार्य तुम कर रहे हो यदि उसकी योग्यताके विषयमें तुम्हें पक्का विश्वास है तो फिर लोगोंके भले-बुरे कहनेसे क्या ? दूसरे यह मान लेना भी गलत है कि लोग तुम्हारे प्रत्येक कार्यको ध्यानसे देखते है । लोग अपने अपने काममें इतने व्यस्त रहते है कि उन्हे इतना करनेको समय भी नहीं है । वहमी भूतोंसे डरना डरपोंकपन नहीं तो क्या है ? कई मनुष्य सोचते है कि उनके नाटकको लोग बडे ध्यानसे देखते है, परन्तु यथार्थमें उनकी

ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता। वे सिर्फ अपनी कल्पनाके सहारे सुना करते हैं कि लोग उनकी निन्दा कर रहे हैं; परन्तु यदि ये लोग मन-चर्वण ही किया चाहते हैं तो फिर मोदक ही क्यों नहीं खाते, सिर्फ धूल ही क्यों ?

मान लो कि लोग यथार्थमें तुम्हारी झूठी निन्दा कर रहे हैं, नाहक तुम्हारे सिर पर अपराध लाद रहे हैं। सोचो कि क्या तुम्हें इसके लिए चिन्तित होना चाहिए ? यदि तुम सचमुच निरपराध हो तो क्या लोगोंकी निन्दा तुम्हें लागू हो सकती है ? ऐसी हालतमें तुम्हें उस ओर बिलकुल ध्यान न देना चाहिए। तुम्हारे सामने यदि कोई ऐसे व्यक्तिकी निन्दा करे, जिसे तुम जानते भी नहीं हो, तो क्या तुम उस ओर ध्यान दोगे ? शायद ऐसा कहा जाय कि वे लोग, जिनकी कृपा तुम्हें इष्ट है, इस लोकापवादको सुन कर तुमसे असंतुष्ट हो जायँ। ऐसा होना संभव है। परन्तु ऐसी दशामें तुम्हें ध्यान-पूर्वक विचार करना चाहिए कि इस दोषारोपण द्वारा तुम्हें कौन कौनसी हानियाँ होना संभव है। यह विचार कर ऐसा उपाय करो जिसमें तुम्हें नुकसान न होने पावे। इसके ठीक विपरीत लोग ऐसी दशामें निश्चेष्ट होकर नाना प्रकारकी कल्पनायें करनेमें ही मग्न हो जाते हैं। वे समझने लगते हैं संसारमें अब उनका ठिकाना ही नहीं है, उनके सारे इष्ट मित्र, बन्धु-बान्धव अप्रसन्न हो गये हैं और अब उन्हें सिवाय रोने और झींकनेके कोई चारा नहीं। उन्हें सोचना चाहिए कि एक तो सब मनुष्योंके ऊपर किसी बातका एक-सा असर पड़ता ही नहीं; दूसरे जो तुम्हारे सच्चे इष्ट मित्र हैं वे ऐसी बे-जड़ बातें मानने ही क्यों चलें ? अथवा यदि बिना अनुसंधान किये ही वे तुम्हें दोषी ठहरा लें तो ऐसे मित्रोंसे क्या लाभ ! इसके सिवाय यह भी विचार हृदयमें लाना चाहिए कि संसारमें हानि-लाभ, यश-अपयश तो हुआ ही करते हैं, इनके लिए रोते फिरना बुद्धिमानी नहीं है !

लोग समझते हैं हमने अमुक मनुष्यके साथ अमुक समय ऐसी ऐसी भलाई की थी, ऋण देकर उसको कारागारसे छुडाया था; इस लिए वह हमारा ऋणी है। ऐसे मनुष्य अपने ऋणके बदलेमें दूसरोंको हदसे अधिक दबनेके लिए बाध्य करते हैं और जब उनकी इच्छानुकूल कार्य नहीं होता दीखता तब उन विचारोंके सिर पर कृतघ्नताका दोष मढते हैं और स्वतः बडे रुष्ट हो जाते हैं। परन्तु इस बातका स्मरण इन्हें नहीं रहता कि दूसरे तुम्हारा उतना ही यश मानेंगे जितनी कि तुमने उनके साथ भलाई की है। उपकारके बदलेमें मात्रासे अधिक कृतज्ञताकी इच्छा रखना भी तो अन्याय है। मनुष्य स्वभावसे ही कृतज्ञ है—किये हुए उपकारको भूलनेके लिए वह तैयार नहीं रहता। जो भलाई तुमने दूसरेके साथ की है उसका योग्य बदला तुम्हें अवश्य मिलेगा। परन्तु कभी कभी लोग अपनी तुच्छ-सी भलाईको इतनी बढा-चढा कर देखते हैं कि उसके बदलेमें उन्हें कितनी ही कृतज्ञता क्यों न दिखाई जाय वे सन्तुष्ट ही नहीं होते। अपने किये हुए उपकारके बदलेमें अक्सर लोग ऐसी बातें चाहते हैं जैसी कि उनके घनिष्ट मित्र अथवा कुटुम्बी जन भी सहजमें करनेके लिए तैयार न होंगे।

यदि किसीके हृदयमें इस बातका सन्ताप हो कि जन-साधारण उसको यथेष्ट सम्मान नहीं देते, तो उसे थोडा इस भाँति विचारना चाहिए—देखो, सर्व-साधारण किसीके गुणोंको ढूँढनेका प्रयास नहीं करना चाहते। जो बातें उनकी दृष्टिके सामने नहीं आतीं उनकी वे जरा भी परवा नहीं करते। दूसरे यदि तुम सचमुच स्तुतिके पात्र नहीं हो और लोग तुम्हारी झूठी बडाई करें तो तुम्हें कितना बुरा लगेगा? किसीके चरित्रसे भली भाँति परिचित हुए बिना उसे एकदम भला-बुरा कहने लगना तो भूल ही है। यदि लोग तुमसे परिचित हुए बिना ही तुम्हारी स्तुति करने लगें तो उन्हें ऐसी भूल करते देख कर ही क्या तुम सन्तुष्ट हो? यदि नहीं

तो फिर तुम लोगोंमें प्रशंसाके पात्र क्यों बनना चाहते हो, जो कि तुम्हें जानते ही नहीं हैं। वे तुम्हारे इष्ट मित्र, जो तुम्हें भली भाँति जानते हैं, अवश्य तुम्हारे गुणोंका यथेष्ट सम्मान करेंगे। इतना होने पर भी यदि कोई यह चाहे कि प्रत्येक मनुष्य, जो उसे आदरकी दृष्टिसे देखता है, उसके सामने आकर स्तुति-पाठ पढ़े तो बतलाइए उसे सन्तुष्ट करना कैसे संभव है?

मानव-हृदय हमेशा सहानुभूतिके लिए तरसता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति इस बातका इच्छुक रहता है कि उसकी योग्यता और उसके किये हुए कार्योंका आदर हो। यद्यपि यह इच्छा प्राकृतिक है और कई अंशोंमें अच्छी भी है; क्योंकि इसके कारण मनुष्योंको अपना चरित्र सुधारनेमें सहायता मिलती है, तो भी मर्यादासे अधिक हो जाने पर यही इच्छा रोगके रूपमें परिणत हो जाती है। इस लिए मनुष्यका कर्तव्य है कि इसको उत्तेजित न होने दे। अन्यथा फिर उससे, लोगोंकी प्रशंसा मिले बिना, कोई उत्तम कार्य न बन सकेगा और हमेशा उसकी दृष्टि लोगोंके मुहँकी ओर ही रहेगी। यदि तुम्हें अपना चरित्र-गठन करना हो तो तुम अपने सामने लौकिक यशसे बढ़कर आदर्श रक्खो। वह मनुष्य, जिसने यश और अपयशको ही अपने कर्तव्यकी कसौटी समझ रक्खा है, नैतिक चरित्रमें अवश्य ही बहुत पिछड़ा हुआ है। यदि दुर्भाग्यसे किसी उत्तम कार्यकी लोगोंने निन्दा कर दी तो ऐसा मनुष्य उस कार्यको बुरा समझे बिना न रहेगा। यह बात सबको विदित है कि जन-साधारण कभी कभी बिना समझे-बूझे ही कार्योंकी आलोचना कर डालते हैं और कई कामोंको, जो वास्तवमें उत्तम हैं, बुरे ठहरा लेते हैं।

बात बातमें संदेह करनेकी, अविश्वास करनेकी बुरी आदत पड़ जानेके कारण कई लोगोंको व्यर्थ ही संतापित होना पड़ता है। सच पूछो तो संसारमें ऐसे मनुष्योंका न कोई कुटुम्बी है और न मित्र। जैसी कि कहा-

वत है—'इन लोगोंको सगे सालेकी भी प्रतीति नहीं होती'। प्रतिदिन जिस भाँति आप उनसे मिलते और बात-चीत करते थे उसमें थोड़ासा अन्तर पडा कि उनके दिलमें शकका भूत घुसा। वे सोचते हैं, 'आज यह नवीनता क्यों? मालूम होता है कि मुझे कुछ हानि पहुँचानेका अभिप्राय है।' ये लोग बहुधा इस बातकी छिप कर परीक्षा किया करते हैं कि आपका भाव उनके प्रति कैसा है। इनका संदेह विशेष कर उस समय बढ़ता है जब कि आप उनसे कालान्तरमें मिलते हैं और उनके साथ ठीक उसी प्रकारका बर्ताव नहीं करते जैसा कि पहले करते थे। समयका प्रत्येक चीज पर कुछ-न-कुछ असर अवश्य ही पड़ता है। इस बातको ये लोग भूल जाते हैं। संशय-रोगसे पीड़ित मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। पहले वे जो अविश्वास इस लिए करते हैं कि उन्हें यह बोध नहीं होता है कि जो वे कार्य करते रहे हैं अथवा जो अनुमति आप उन्हें दे रहे हैं वह वास्तवमें ठीक है या नहीं। ऐसे मनुष्योंकी आदतसे ज्यों ही लोग परिचित हो जाते हैं त्यों ही वे उनके घृणाके बदले प्रेम करने लगते हैं और उन्हें वास्तविक बात समझानेका प्रयत्न करते हैं। दूसरे प्रकारके शकी लोग स्वार्थान्ध होनेके कारण लोगों पर अविश्वास करते हैं। उनके रोगका सिर्फ यही उपाय है कि वे इस बुरी आदतको दूर करनेका भरसक प्रयत्न करते रहें। यह बात सदैव स्मरण रक्खो कि शांति और सत्यका घनिष्ट संबंध है। जहाँ जहाँ सत्य है वहीं शांति है; परन्तु सत्यका मतलब हमें समझ लेना चाहिए। लोग समझते हैं कि सत्यका मतलब सिर्फ इतना ही है कि जो बात जैसी है उसको वचन द्वारा वैसी ही कह देना। सत्यकी यह परिभाषा संकीर्ण है। वचनकी सत्यताके सिवाय, मानसिक भावों और कार्योंकी सत्यताके विषयमें हम स्वप्नमें भी विचार नहीं करते। जो भाव हमारे मनमें है ठीक उसीको प्रकाश करना, जो कार्य हमने किया है अथवा करना चाहते हैं, ठीक उतना ही—न

कम न अधिक—लोगोंको बताना ये सत्यके दोनों अंग सच बोलनेसे भी अधिक महत्त्व-पूर्ण हैं ।

' मनमें होय सो वचन उचरिये ।
वचन कहो सो तनसों करिये ॥ '

कविकी यह स्मृति बड़ी सुन्दर है । यदि हम अपने जीवनमें इस उक्तिके अनुसार कार्य करें तो अशान्ति हमारे हृदयके निकट फटकने भी न पावेगी । इसके विपरीत यदि हम लोगोंको धोखा दें और अपनेको इतने शक्तिमान्, विद्वान् अथवा धनवान् बतावें जितने हम वास्तवमें नहीं हैं, तो हमें अवश्य ही कष्ट होगा ।

यदि हम अपने जीवनको शान्तिमय बनाना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि अपने अवकाशके समयका सदुपयोग करें । हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि मनोरंजनके कार्योंमें चित्त न दो । नहीं नहीं परिश्रमके पश्चात् आराम करना तो आवश्यक ही है; परन्तु हम यह कहते हैं कि निठल्ले मत बैठो । बहुधा देखा गया है कि कई मनुष्य कुछ समय तक तो बड़ा कठिन शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करते हैं; परन्तु इसके पश्चात् उन्हें निठल्ले बैठना पड़ता है जिससे कि उनका जी ऊब उठता है, उन्हें वह फुरसतका समय बड़ा बोझल प्रतीत होता है । मनुष्यको एकाध उद्योग हमेशा ऐसा ढूँढ़ रखना चाहिए जिससे कि उसकी प्राकृतिक अभिरुचि हो और जिसके द्वारा वह अवकाशके समय अपना मनोरंजन कर सके ।

जिस भाँति शरीर और मनको आलसी बना देनेसे मनुष्यकी आकुलतायें बढ़ती हैं उसी भाँति हृदय-स्थानको प्रेम-शून्य रखनेसे भी जीवनमें शान्ति लाभ नहीं हो सकती । इस बात पर विश्वास रक्खो कि मनुष्यके लिए सबसे अधिक भयानक समय वह है जब कि उसका जी दुनियासे घृणा करने लगता है । जिस मनुष्यको अपना जीवन भारी मालूम

हो उसको एक-बार अपने हृदयसे यह पूछना चाहिए कि उसमें मनुष्योंके प्रति सहानुभूति और प्रेम है या नहीं ।

जीवनके व्यापारोंको परिणामसे अधिक महत्त्व देनेकी आदत मानसिक शान्तिके लिए हानिकारक है । यह आदत सैकडे पीछे प्रायः नव्वे आदमियोंमें पाई जाती है । जरा इस बातका भी तो विचार करो कि ऐसा करनेसे कौनसी हानि होती है । थोडी देरके लिए उन मनुष्योंको देखो जो कि संसारमें खूब उलझे हुए हैं । जब कि उनकी सांसारिक कार्रवाइयाँ उनकी इच्छाके अनुकूल नहीं होतीं तब उन्हें कैसा तीव्र दुःख होता है। ऐसे मनुष्य जिस ओर देखते है उन्हें सांसारिक जड पदार्थ—रुपया, पैसा, परिग्रह, मान, अपमान—ही दिखाई देते हैं । मृग-तृष्णाके समान वे बेचारे दिन रात उन्हींके पीछे पड़े रहते हैं । वे यही समझते हैं कि चिरकाल तक उन्हें संसार हीमें रहना है, और इसी लिए वे सब साधनोंको अपनी इच्छानुकूल बनाना चाहते है । ठीक वैसी ही चिन्ता, जैसी कि एक जुआरीको सोते, जागते, उठते, बैठते लगी रहती है, हमेशा उनके हृदयको जलाया करती है । सच पूछो तो उन्हें वह शांति भी पर्याप्त नहीं जो कि एक मजदूरको प्राप्त है । कितना अच्छा हो यदि ऐसे लोग प्रत्येक कार्यको शान्तिके साथ करें और उद्योगको अपना कर्तव्य समझें। यदि ये लोग अपने अभिप्रायोंको सुधारनेके लिए इतने चिन्तित हों तो इनका कल्याण होनेमें विलम्ब न लगे । संसारके नास्तिकवादी इन्हें जोर जोरसे पुकार कर सुनाते है कि यह दौड़-धूप सब व्यर्थ है, जीवनके दीपक बुझने तक ही सारा खेल है । आस्तिकवादी, जिन्हें कि परलोकका विश्वास है, चिल्लाते हैं कि भाइयो, वर्तमानके कारबारमें इतने मत उलझो, भविष्यके अनन्त संसारकी भी तो सुध लिया करो । परन्तु ये लोग अपने धंदेमें इतने व्यस्त रहते है कि इनके कानोंपर जूँ तक नहीं रेंगती । अपनी विचार-तरङ्गोंमें ये इतने मस्त रहते है—इसको बनाना, उसको बिगाडना,

इन्हीं बातोंमें ये इतने संलग्न रहते हैं—कि इन्हें मृत्युके आगमनका जरा भी विचार नहीं होता। निदान ये बेचारे इच्छा न रहते हुए भी मृत्यु आ जाने पर अपने जंजालोंसे मुक्ति पा जाते हैं।

इस लेखमें हमारी मंशा दुःख मात्रसे छुटकारा पा जानेके उपायोंको बतानेकी नहीं है और न हम दुःखोंसे दूर भागनेकी ही अनुमति देते हैं। परन्तु हमारा आदेश यही है कि जब तक दुःखको हल करनेका एक भी उपाय तुम कर सकते हो तब तक तुम्हें हताश होकर रोना न चाहिए। यदि तुम्हारे सब उपाय निष्फल हो जायँ और दुःख तुम्हें चारों ओरसे घेर भी ले तो तुम्हारा कर्तव्य है कि एक वीर पुरुषकी तरह उसको धीरता-पूर्वक सहन करो। सब लोग जानते हैं कि हमारे ऊपर चाहे कैसी ही आपत्ति क्यों न पड़ जाय, कैसे ही प्यारे बन्धु-बान्धवका वियोग क्यों न हो जाय, हमें अपने नैमित्तिक कार्योंको करना ही पड़ता है। निदान विपत्तिमें रोना और अपने कर्तव्यको भूल जाना मनुष्योचित नहीं है। हमें यह निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि दुःख मनुष्यके साहसकी कसौटी और उसके जीवनका एक अंग है।

इस बातको स्वीकार कर लेना अनुचित न होगा कि जीवनमें कई दारुण दुःख ऐसे भी हैं कि जिनके सामने ये उपाय, जो हमने ऊपर बताये हैं, निष्फल प्रतीत होंगे। यथार्थमें मानव-हृदयको पूर्ण शान्ति लाभ करा देना सहज कार्य नहीं है। इसी लिए सन्तप्त हृदयकी वेदनाओंको शान्त करनेवाले उपायकी खोजमें मनुष्यकी बुद्धि चिरकालसे लगी आ रही है। प्रत्येक संप्रदाय और जातिने अपनी अपनी शक्तिभर उस परमात्माके स्वरूपको ढूँढ़नेका प्रयत्न किया है जिसने कि जीवनको सुख और दुःखका आधार निर्मित किया है। यूरोपके स्टॉइक और इपिक्यूर विद्वानोंने ' जरूरतके ' सिद्धान्तकी पुष्टि इसी हेतु की है। हमारा धर्म, जो कि पर-

मात्माको असीम दयाका आधार मानता है और पुनर्जन्मको सिद्ध करता है, ऐसी ऐसी उत्तम शिक्षाओंसे भरा हुआ है कि उसका मनन करनेसे मनुष्यके सन्तप्त हृदयको शान्ति मिल सकती है। निदान कोई भी धर्म हो, जिसमें कि आत्मा और परमात्मा, संसार और जीवनके स्वरूपका भली भाँति विवेचन किया गया है—ऐसे धर्मके तत्त्वोंका निश्चल चित्तसे मनन करना यह शाति-लाभ करनेका अन्तिम और अटल उपाय है।

कार्य-कुशलता।

जीवन-संग्राममें विजय प्राप्त कर लेना कोई सरल काम नहीं है। ऐसे विरले ही भाग्यवान् है जिन्हें मृत्यु-शय्या पर पडे हुए इस बातका सतोष हो कि संसारमें जन्म लेकर उनने कुछ कार्य सम्पादन किया है। अंतमें चाहे सफलता प्राप्त हो अथवा न हो, शूरवीरकी नाई कर्तव्य-पथ पर डटे हुए आगे बढनेमें जो अपूर्व आनन्द मिलता है उसे वे ही लोग समझ सकते है जिन्हें उसका अनुभव हो चुका है। परन्तु ऐसे कर्मवीर दुनियामें आपको इने-गिने ही मिलेंगे। हजारमेंसे नौसौ निन्यान्वे तो सिर्फ बात-चीतका जमाखर्च करना ही जानते है। सच बात तो यह है कि नाना प्रकारके साधनोंको जुटाते हुए, विघ्न और बाधाओंसे लडते हुए कभी जीतते कभी हारते जीवनमें आगे बढते जाना बडा ही कठिन है। जो उद्देश्य अपने सामने रक्खा है उसकी प्राप्तिके हेतु यदि आवश्यकता हो तो जीवनका बलिदान देनेके लिए भी प्रस्तुत रहना यही सच्चा कर्तव्य-प्रेम है।

जीवनको यदि सचमुच ही सफल बनाना चाहते हो तो केवल विद्या, बुद्धि और परिश्रमसे ही काम न चलेगा। उन विद्या-बैलोंको देखो

जो थोथी रटंतमें ही अपना समय व्यतीत कर देते हैं। यदि इनसे दो पैसेकी शाक ही खरीदनेको कहा जाय तो ये लोग विलकुल भौंचक हो जाते हैं। इसी भाँति बड़े बड़े तत्त्ववेत्ताओंने भी—यदि सच पूछो तो—संसारका स्वतः कोई उपकार नहीं किया है; इन्होंने सिर्फ वे हथियार ही बनाये हैं जिनका उपयोग उनके पश्चात् होनेवाले कर्तव्य-शूरोंने किया है। कोरा परिश्रम करनेसे भी दुनियामें अधिक कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता। जीवनको सार्थक बनानेके हेतु, अपना और पराया सच्चा कल्याण करनेके लिए यदि कोई वस्तु आवश्यक है तो वह कार्य-कुशलता है। चतुर मनुष्यको सभी आदमी तुरन्त ही पहचान लेते हैं। आलसी मनुष्य ऐसे व्यक्तिको भले ही ईर्षाकी दृष्टिसे देखें; परन्तु उसके कौशलकी, उसकी हिक्मतकी उन्हें अवश्य ही प्रशंसा करनी पड़ती है। कार्य-कुशलताका परिभाषा द्वारा ज्ञान करा देना असंभव है। ऐसे मनुष्योंके सहवासमें रहना ही उनके गुणोंको पहचानने और सीखनेका सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु ऐसे महात्माओंका दर्शन बड़े भाग्यशालियोंको ही प्राप्त होता है। इस लिए जन-साधारणको इन पुरुष-सिंहोंका दिग्दर्शन करानेके लिए ही इस पाठमें हम कुछ चेष्टा करेंगे।

साधारण मनुष्यको भी अपने दैनिक जीवनमें नाना प्रकारके कार्य करना पड़ते हैं। सवेरेसे लेकर रात्रिमें—जब तक वह निद्रादेवीकी शरणमें प्राप्त नहीं होता—उद्योगी पुरुष एक-न-एक कार्यमें लगा ही रहता है। उसके कई कार्य सामाजिक, कई रोजगार सम्बन्धी और कई प्राइवेट रहते हैं। इनमेंसे प्रत्येक कार्यके लिए नाना कारणोंकी योजना करनी पड़ती है। बहुधा एक कार्य दूसरेका प्रतिपक्षी भी होता है। जिस कार्यके सम्पादन करनेमें उसके कई इष्ट मित्रोंको आनन्द होता है उसीमें दूसरोंको बुराई प्रतीत होती है। उदाहरणके लिए मान लीजिए कि मैं एक

शिक्षक हूँ। मुझे शालामें प्रतिदिन बीस मास्टरोंसे मिलना पड़ता है और उनसे काम लेना पड़ता है। कभी कभी ऐसा होता है कि मेरे अफसर ऐसी बातें चाहते हैं जिनको कि मेरे सहकारी शिक्षक लोग पसन्द नहीं करते। यही एक कठिन समस्या है। जीवनमें मनुष्यकी ज्यों ज्यों उन्नति होती जाती है त्यों त्यों ऐसे मौके उसे प्रतिदिन मिलते रहते हैं। ऐसे समयमें बिना संघर्षणके कार्यको सम्पादन करनेके लिए बड़े कौशलका प्रयोजन होता है। सब कार्योंको यथा समय योग्य विधिसे अपनी इच्छानुकूल सम्पादन कर लेनेके लिए मनुष्यको व्यवहार-कुशल होना चाहिए। जिस भाँति सारे जगत्में विभिन्न दिशाओंमें द्रुत-गतिसे घूमते हुए तारागणोंको गुरुत्वाकर्षणका बल अपनी अपनी कक्षाओंमें घूमनेके लिए बाध्य करता है और उन्हें आपसमें एक दूसरेके साथ टक्कर खानेसे रोक कर परस्परका सहकारी बनाता है उसी भाँति दैनिक जीवनके भिन्न भिन्न कार्योंको यथा समय सम्पादन करने, एक दूसरेमें बाधा डालनेसे रोकने और परस्पर सहायता पहुँचानेके लिए प्रवृत्त करनेमें व्यावहारिक कौशलकी आवश्यकता होती है। अनुभव-हीन मनुष्य सोचता है कि अमुक काम करनेमें क्या रक्खा है; रोटी बनानेमें किस चतुराईकी आवश्यकता है? उसे किसी खास कामके लिए कितने साधनोंकी आवश्यकता है, इसकी कुछ भी खबर नहीं होती। इसके विपरीत अनुभवी मनुष्य जान लेता है कि अमुक कार्य उसकी शक्तिके बाहर है अथवा नहीं। अकर्मण्य पुरुष सिर्फ मनके मोदक खाने हीमें दत्त चित्त रहता है, उसका कार्य ठीक उस कहानीके अहीरकी नाईं होता है जो कि सिर पर घीकी मटकी रक्खे ही रक्खे कुटुम्बको उत्पन्न कर लेता है। वह बहुधा कहा करता है कि समय आने दो मैं ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा इत्यादि। कर्मवीर पुरुषके सामने जो काम हुआ उसीको उसने किया। जो साधन उसे प्राप्त हो सकें उनका उपयोग करनेके लिए ही वह तत्पर

रहता है। मान लीजिए गर्मीका समय है और पंखेकी जरूरत है। और दो मनुष्य हैं। एक हिकमती और दूसरा अलाल। एक कागजका पुट्ठा वहीं पड़ा हुआ है। अलाल सोचता है कपड़ेका उम्दा पंखा तैयार करावेंगे, दरजीसे झालर लगवावेंगे इत्यादि। इसके विपरीत हिकमती मनुष्य कागजके पुट्ठेको लेकर और फौरन उसे कतरनीसे काट कर पंखा तैयार कर लेता है। 'यदि ऐसा होता तो ऐसा करते' इस भाँति गत बातोंका सोच करते हुए समयको नष्ट करना उद्योगी पुरुषको नहीं भाता। आशा-रूपी सूर्यकी ओर गमन करते रहनेसे उद्योगी पुरुष पर निराशाकी परछाईं तक नहीं पड़ती।

यदि कोई कार्य करना है तो उसके लिए जो युक्ति उसे प्रथम ही सूझ पड़ेगी उसीका उपयोग वह निःसङ्कोच कर लेगा। उत्तम उपायोंको सोचते बैठना और इस भाँति समयको नष्ट करना उसे अच्छा नहीं लगता। जिन उपायोंकी आयोजना उसने की है उनको यदि आप स्वल्प, सुलभ और सुन्दर न पावेंगे तो इतना तो आपको अवश्य ही कहना होगा कि ऐन वक्त पर पहले वे ही सूझ पड़े थे।

हम समझते हैं कि चतुर मनुष्यके मस्तिष्कमें ऐसी कोई खास शक्ति मौजूद है जिसके द्वारा वह अपने सांसारिक कार्योंको ऐसी सुलभतासे सम्पादन कर लेता है। जिस भाँति हमारे मनमें अवलोकन, तर्कना और विचार करनेकी भिन्न भिन्न शक्तियाँ रहती हैं और इनमेंसे कोई शक्ति किसी मनुष्यमें बलवान और किसीमें निर्बल होती है। चतुर मनुष्यमें नाना उपायोंको ढूँढ़ निकालनेकी शक्ति अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा बलवान है, परन्तु हमारा यह विचार केवल भ्रम ही है। व्यावहारिक कौशल कोई शक्ति-विशेष नहीं है। मनकी शक्तियोंका वह सुन्दर संगठन, जिसके कारण वे सब आपसमें मिल कर कार्य करती हैं और एक दूसरेको सहायता पहुँचाती हैं, मनुष्यको चतुर बनाता है। समयका अवलोकन,

उसीके अनुकूल उपायोंको विचारनेकी शक्ति और तदनुकूल कार्य, बस चतुर मनुष्यमें और कोई विशेष शक्ति नहीं है। मानसिक शक्तियोंमें यदि सम्मिलित कार्य करनेकी आदत न हो तो मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो वह जीवनमें कृतकार्य नहीं हो सकता। हिक्मतके इस असली स्वरूपको हम इस लिए नहीं समझ पाते है कि ज्यो ही कोई मनुष्य हमारे सामने किसी खास काममें सफल नहीं होता हम उसकी असफलताका एक कारण-विशेष ठहरा लेते हे और मनमें इस भॉति स्थिर कर लेते है कि यदि इन मनुष्यमें अमुक गुण होता तो यह अपने कार्यमें सफल हो जाता। इस भॉति कभी हम दूरदर्शिताको, कभी विनयको और कभी कभी कुटिलताको ही कौशल समझ बैठते ह, परन्तु यह हमारी भल ही है। कोई एक ही गुणके कारण मनुष्य व्यवहार-कुशल नहीं हो सकता। यदि आप यह माने कि जो उद्देश्य अपने सामने रक्खा है उसकी पूर्तिके लिए निरन्तर उद्योग करते रहनेसे ही मनुष्य जीवनमें कृतकार्य हो सकता है और प्रशसाका पात्र बन सकता हे तो हम कहेंगे कि सिर्फ ऐसा ही मान लेना भूल है। एक कजूस मनुष्यको देखो, क्या उसकी सब चेष्टायें, जो उद्देश्य उसके सामने है, उसकी पूर्तिके लिए नहीं होतीं? परन्तु क्या इसी कारण ऐसा मनुष्य प्रशसाका पात्र हो सकता है?

व्यावहारिक कौशलके विषयमें लोगोंको एक सदेह बहुधा रहा करता है। वे अक्सर पूछते है कि ऐसे लोग, जिनमें कल्पना शक्तिकी मात्रा अधिक होती है, क्या व्यवहार-कुशल हो सकते हें? हम ऐसे मनुष्योसे पूछते हैं कि कल्पना शक्तिकी अधिकताका वे क्या मतलब समझते हें। यदि इससे तुम्हारा अभिप्राय यह हो कि ऐसे मनुष्योंकी कल्पना-शक्ति इतनी अधिक बढ गई है कि इसके कारण और और शक्तियाँ अपना कार्य यथेष्ट रीतिसे सपादन नहीं कर सकतीं तो तुम्हारा कहना सत्य है। जिस प्रकार

शरीर-विज्ञानका यह तत्त्व है कि यदि शरीरका कोई अङ्ग हृदयसे अधिक स्थूल हो जाय तो दूसरे अंग अवश्य पतले हो जावेंगे और शारीरिक सुन्दरता नष्ट हो जायगी। उसी भाँति मनो-विज्ञानका भी नियम है कि मनकी किसी शक्ति-विशेषका अमर्याद-रूपसे पुष्ट हो जाना दूसरी शक्तियोंकी निर्बलताका कारण हो जाता है। परंतु इससे यह न मान लेना चाहिए कि यदि कल्पना-शक्ति अपना कार्य प्रौढ़तासे करे तो भी मनुष्य व्यवहार-कुशल नहीं हो सकता। नहीं नहीं, ठीक इसके विपरीत कल्पना-शक्तिका उपयोग किये बिना मनुष्य जीवनके व्यापारोंमें कृतकार्य हो ही नहीं सकता। पदार्थ-विज्ञानके भारी भारी शोध बिना कल्पना किये हो ही नहीं सकते थे। बिना अड़चनोंकी कल्पना किये बतलाइए तो सही मनुष्य ऐसा उपाय क्यों कर ढूँढ़ेगा जिससे कि कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो। लोग बहुधा कवियों और उपन्यास-लेखकोंकी ओर देख कर अक्सर कल्पना-शक्तिको संशयकी दृष्टिसे देखते हैं; परन्तु हम पूछते हैं कि एक उत्तम कवि अथवा उपन्यास-लेखककी कृति बड़ेसे बड़े कर्त्तव्य-शूरके कामसे किस भाँति कम है?

कुशल मनुष्य सदैव प्रसन्न-चित्त रहा करते हैं। उन्हें दुनियाके कामोंके विषयमें अधिक चिन्ता नहीं रहती। उन्हें इस प्रकार हँस-मुख देख कर लोग समझने लगते हैं कि व्यवहार-कुशल हो जाने पर मनुष्य उथले हृदय-का हो जाता है। उसको मौज उड़ानेकी सूझती है। नाना उपायोंसे, चाहे वे नीच ही क्यों न हो, उसे सिर्फ अपना काम पूरा करने हीकी धुन रहती है। इसी लिए यदि आपने किसी कार्यके विषयमें थोड़ा भी अनुसंधान किया, जरासी पूछ-ताछ की कि लोग आपको 'ऊँघनदास' कहने लगे। यदि आपने, जो उपाय सामने मौजूद हैं, चाहे वे आपकी कार्य-सिद्धि करनेको उपयुक्त भले ही न हों, उनको स्वीकार करनेके लिए जरा भी आगा-पीछा किया कि लोग आपको बतक्कड़ और अकर्म-

ण्य कहने लगते हैं । ऐसे मनुष्योंने मान रक्खा है कि वर्तनके छेदको कुछ समय तक बंद कर देनेका नाम ही कुशलता है, चाहे कालान्तरमें वह छेद कितना ही बडा क्यों न हो जाय । इन लोगोंको सदैव स्मरण रखना चाहिए कि व्यवहार-कुशल मनुष्यको रोगका वास्तविक उपाय करना ही अच्छा लगता है । उसे ऐसे चुटकलोंसे बडी घृणा है जिनके कारण सिर्फ कुछ कालके लिए ही आराम मालूम हो । वह कार्यको वास्तविक रीतिसे करना चाहता है, केवल दिखाऊ काम करना तो मूर्खता है । इसी लिए वह किसी कार्यको शुरू करनेके पहले उसके विषयमें खूब अनुसन्धान करता है ।

तत्त्ववेत्ता बेकनका कहना है कि "मानव-जीवन-रूपी नाटक-गृहमें कोई व्यक्ति तमाशगीरके समान नहीं बैठ सकता । सिर्फ परमात्मा और देवता लोग ही इस नाटकको सुखासीन होकर देखा करते हैं । विचार और कार्य इन दोनोंका अटल जोडा बनाये रखनेकी ससारमें भारी आवश्यकता है । दीर्घ विचार और तदनुकूल कार्य इन दोनोंका मधुर सम्मेलन ऐसा सुखदायी है जैसा कि विश्राम और कार्य । " बेकन साहबकी यह सम्मति व्यवहार कुशल मनुष्यको खूब रुचती है और इसी कारण लोग उसे संशयकी दृष्टिसे देखते हैं । वे समझते हैं, सामयिक आवश्यक्ताके अनुसार कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्यमें प्रवृत्त हो जाना इसीका नाम कौशल है । परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि कर्तव्यशील व्यक्ति सिर्फ जरूरतके लिहाजसे ही किसी कामको करनेके लिए कभी उद्यत न होगा, चाहे वह कार्य बिना किया ही क्यों न रहे । हम लोगोंको यह बात भली भाँति याद रखनी चाहिए कि नीतिशास्त्रके आदेशोंको जब व्यावहारिक कार्योंमें परिणत करना पडता है तब हमें उनको बहुत लचाना पड़ता है । यदि ऐसा न किया जाय तो मनुष्यको सत्य-असत्य और पुण्य-पापके मारे चलने फिरने तकको स्थान न मिलेगा ।

देश-कालकी आवश्यकतानुसार धार्मिक नियमोंमें भी रद्दो-बदल करनेकी आवश्यकता पड़ती है। यदि हम यह समझते हों कि कार्यमें प्रवृत्त न होनेसे धार्मिक नियम अखंड रीतिसे पाले जा सकते हैं तो यह हमारी भूल है। इसी भाँति यदि हम विचारें कि सारे उच्च विचार सिर्फ बतानेके लिए ही हैं, दैनिक जीवनमें इनके अनुसार चलनेसे काम नहीं चलता तो भी हमारा भ्रम ही है। इस बातको स्मरण रखना चाहिए कि संसारमें बुद्धिमान लोग किसी खास विषय पर पहले विचार करते हैं, फिर तद्नुकूल कार्य किया जाता है, तब मालूम होता है व्यवहारमें वह विचार-श्रेणी कहाँ तक उपयोगी है। फिर उसीके अनुसार विचार-पद्धतिमें हेर-फेर किया जाता है। इसी भाँति कार्योंसे विचार और विचारोंसे कार्य यह नियम अनादि कालसे चला आता है। विचारके बिना कार्य और कार्यके बिना विचार यह असंभव ही है। स्मरण रहे कि वे नियम, जो आज हमें इतने पूज्य जँचते हैं, उसी प्रकार विद्वानों और कर्तव्य-शील पुरुषों द्वारा निर्मापित हुए हैं।

दूसरोंके विषयमें मन्तव्य स्थिर करना।

बहुतेरे मनुष्योंके दूसरोंको विषयमें अपनी राय कायम करनेमें कुछ भी समय नहीं लगता। बिना सोचे विचारे ही ये लोग झट कहने लगते हैं—' अह! फलाना मनुष्य घमंडी है, अमुक मनुष्य कुछ मंद-बुद्धि-सा है। परन्तु विचारनेकी बात है कि इस भाँति उतावली करनेसे मनुष्य केवल दूसरोंको ही हानि नहीं पहुँचाता। परन्तु इसका परिणाम स्वतः उसके लिए भी हानिकारक होता है। अपने विचारोंको इस भाँति असावधानीसे प्रकाशित करनेमें मानों हम, लोगोंके विचारोंमें झूठा परिवर्तन करानेके लिए, झूठे साक्षी ही तैयार करते

करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। बहुधा मनुष्योंको आप उनके व्यवहारों द्वारा, उनके रहन-सहन और बात-चीत परसे भली भाँति पहचान सकते हैं। लोगोंको इस भाँति मनुष्यका चरित्र पहचाननेके सैकड़ों साधन होते हैं और उनके निर्णय भी बहुधा सत्य होते हैं। परन्तु तो भी हमें लोकमतके अनुसार किसी व्यक्तिके बारेमें अपनी राय शीघ्रतासे कायम न करना चाहिए। विशेष कर उस समय जब कि हम स्वतः उसका परीक्षा द्वारा निर्णय नहीं कर सकते। यदि हम लोकमतको भेड़िया-धसानकी नाईं स्वीकार कर लें तो अशिक्षित जन-समुदाय और हममें कोई अन्तर न रहेगा। ऐसे मौके पर लोक-मतका शांति-पूर्वक मनन करना चाहिए। विचार करना चाहिए कि लोगोंने अपने मतको किन किन *प्रमाणों पर निर्धारित किया है और यदि यह टीका-टिप्पणी किसी व्यक्ति* विशेषके चाल-चलनके बारेमें हो तो इस बातका भी पता लगाना चाहिए कि लोगोंका कहना सर्वांशमें सत्य है या नहीं। इस बातका स्मरण रक्खो कि कभी कभी ऐसी बातें, जो कई अंशोंमें सत्य भी हैं, वस्तुका बिलकुल उल्टा स्वरूप बतला देती हैं। किसीने आपके रामलालके विषयमें पूछा, रामलाल कई दिन हुए चोरीके अपराधमें पकड़ा गया था। परन्तु पीछेसे निर्दोष प्रमाणित होकर छूट गया। अब आप यदि उस व्यक्तिसे सिर्फ सम्पूर्ण बातका पहला भाग ही कह दें तो यद्यपि एक अंशमें आप सत्य भाषण ही कर रहे हैं; परन्तु आपकी बातको सुन कर उस *व्यक्तिके विचार रामलालके विषयमें कैसे होंगे? कभी कभी* ऐसा भी होता है कि किसी खास शब्द पर जोर देनेसे ही सारी बातका मतलब पलट जाता है। शिक्षककी एक शिष्यके विषयमें निम्न लिखित दो बातोंसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। 'गोपाल मंद-बुद्धि तो नहीं है?' उत्तर–'है जैसा तो' 'बिलकुल ही है'। एक तो जन-साधारण अपने विचारोंको स्थिर करते समय इन सूक्ष्म बातों पर ध्यान नहीं देते। दूसरे वे बहुधा

एक दो उदाहरणों परसे ही नियमको कायम कर लेते हैं, इस लिए लोक-मतका अन्ध-विश्वास करना योग्य नहीं है।

कई लोग यह सोचते हैं कि यदि वे स्वतः किसी बातका अनुसंधान करें तो उनसे भी तो भूलें होंगी। वे लोगोंके कहनेको इस लिए मान लेते हैं कि उनका विश्वास है कि जब बहुतसे आदमी यदि किसी एक ही वस्तुके विषयमें विचार करते हैं तब वे एक दूसरेकी भूलें सुधार लेते हैं। ऐसे मनुष्यको जान लेना चाहिए कि जन-साधारणको अनुसंधान करनेकी न रीति मालूम है, न उनके पास इतना समय और साधन ही है कि वे अपनी भूलोंको सुधार सकें। किसी व्यक्ति विशेषके बर्ताव अथवा चाल-चलनके विषयमें लोग जो कुछ टीका-टिप्पणी करते हैं उसे यदि तुम ध्यान-पूर्वक सुनो और उसके विषयमें अच्छी छान-बीन करो तो तुम्हें प्रकट होगा कि उसमेंसे अधिकांश तो असत्य ही है। लोग दूसरोंकी झूठी आलोचना क्यों करते हैं, यदि इसके कारण खोजे जायँ तो विदित होता है कि बहुधा विषयोंमें या तो लोगोंको पूरा हाल मालूम नहीं होता अथवा वे अपनी तर्कना-शक्तिका यथार्थ उपयोग नहीं कर सकते। इस लिए असत् हेतुओंसे असत्तत्त्वको सिद्ध कर डालते हैं। कभी कभी लोग ईर्षा, द्वेष अथवा विपक्षके कारण भी अपने प्रतिपक्षियोंकी झूठी समालोचना करते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि हमारा ध्यान किसी बातको सुनते समय दूसरी जगह रहता है। हम उस बातको आधीसी सुनते हैं और उसीके ऊपर अपने विचार कायम करने लगते हैं। कभी कभी कोई मनुष्य, जो स्वतः उस बातको समझनेकी योग्यता नहीं रखता, हमसे आकर जैसी उसने उस बातको समझ रक्खी है कह देता है और उसके कहने अनुसार हम अपनी राय स्थिर कर लेते हैं। कभी कभी बिना सोचे विचारे लोग यों ही गप्प उड़ा दिया करते है। और कभी कभी ये सब कारण मिल-जुल कर हमारे विचारोंको सत्यकी ओर जानेसे रोक लेते हैं।

वोलेस्टन साहबकी 'Religon Nature' नामक पुस्तकमें इस विषयके सम्बन्धमें कुछ वाक्य बड़े ही मर्म-पूर्ण हैं। साहब कहते हैं कि मनुष्यकी नेकनामी या बदनामी बहुधा नीच जातिके मनुष्यों पर अवलम्बित रहती है। ये लोग इस घरसे उस घर पर छोटी छोटी बातोंको बड़ी शीघ्रता--से फैला देते हैं। ये लोग उन कीटाणुओंके समान हैं जो सूत्र द्रुत-गतिसे गमन करते हैं। सच पूछो तो ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं जिनको वस्तुओं-का यथार्थ स्वरूप वर्णन करनेका अवसर प्राप्त हो अथवा जिनमें ऐसा करनेकी इच्छा अथवा योग्यता ही है। कोई कार्य भला अथवा बुरा है यह कहनेके पहले केवल उस मामलेका ज्ञान प्राप्त कर लेना ही आवश्यक नहीं; परन्तु उसकी परिस्थितिको जानना भी जरूरी है। परिस्थिति शब्दमें उस मामलेमें शामिल व्यक्तियोंके अभिप्राय, उनकी योग्यतायें, उनके आपसके भाव, उस समय और स्थानकी खासियतें इत्यादि बातें शामिल हैं। सम्भव है कि वे अभिप्राय, जिनके द्वारा प्रेरित होकर मनुष्य किसी कार्यमें प्रवृत्त होता है, सिवाय उसी मनुष्यके दूसरा कोई न जानता हो। संभव है जिस दृष्टिसे उस विषयकी ओर तुम देख रहे हो उससे उसका मत बिलकुल ही भिन्न हो। अथवा यदि लोग ही उस कार्यके विषयमें मत प्रकाश करनेमें भूल करते हों तो कौन आश्चर्य है। किसी विषयमें निष्पक्ष भावसे अनुसंधान करनेवाले मनुष्य कितने हैं? अपने प्रतिपक्षीने वस्तुके स्वरूपको किस भाँति समझ रक्खा है, यह जाननेके लिए कितने मनुष्य अपनी कल्पना-शक्तिका उपयोग करते हैं। हम सदैव वस्तुओंकी ओर चश्मोंमेंसे देखते हैं। प्रायः बहुतसे प्रश्नोंके विषयमें हम अपने विचारोंको पहले हीसे स्थिर कर रखते हैं और जब हम इनका निर्णय करनेको बैठते हैं तब ये ही विचार हमारी बुद्धिके सामने पर्दा डाल कर हमें सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय नहीं करने देते। सच पूछो तो सत्यकी खोज करनेके लिए हम अपनी शक्तियोंका सच्चा उपयोग कभी करते ही नहीं। यदि हवाई

महल बनाना हो, अपने शत्रु पर विजय-प्राप्तिके मन-मोदक खाना हो और अपने तईं निर्दोष कल्पना करनेकी आवश्यकता हो तो देखिए लोग अपनी कल्पना-शक्तिका कैसा सुन्दर उपयोग करते हैं। यदि भाग्य-वश कभी किसीने सत्यको ढूँढनेका प्रयास भी किया और उसे इस कार्यमें सफलता भी प्राप्त हो गई तो वह अपना मत प्रकाशित करनेसे डरता है। वह सोचता है कि मनुष्य उसे कहीं मूर्ख या भेड़िया-धसान न समझ लें।

अभी तक हमने यह दिखलाया है कि मनुष्यके वर्ताव या चरित्रकी आलोचना करते समय हमें लोक-मतका विचार नहीं करना चाहिए। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इन विषयोंमें सच्ची समालोचना करना कितना कठिन कार्य है। मान लीजिए रामलालका आपसे परिचय नहीं है। कोई व्यक्ति आपसे आकर कहता है कि रामलालने अमुक मनुष्यसे घूँस लेली है। किस भाँति, किस समय और कहाँ पर यह कार्य हुआ है इसका सविस्तर वर्णन भी आपको सुनाया गया। अब आपको यह निश्चय करना है कि रामलालने सचमुच वह कार्य किया है या नहीं। मान लो कि वे सब बातें, जो आपको बताई गईं, सत्य हैं, परन्तु रामलालकी आन्तरिक इच्छाके विषयमें सत्य अनुमान बाँधना बड़ा ही कठिन है। प्रथम तो यह देखना आवश्यक है कि कहीं हमारे चित्तमें स्वार्थ-बुद्धि न घुस आवे। दूसरे रामलालके अभिप्रायको समझनेके लिए रामलालके चरित्रके विषयमें सच्चा अनुसंधान होना चाहिए। सच पूछो तो स्वत रामलाल भी अपने उस समयके अभिप्रायको सरलतासे न बता सकेगा।

दूसरोंके कार्योंकी समालोचना करना यथार्थमें बड़ा दुस्तर कार्य है। परन्तु जीवनमें हमें पद-पद पर लोगोंकी जाँच करके उनके विषयमें अपने मन्तव्य स्थिर करना पड़ेंगे। ऐसे अवसर पर हमें क्या करना चाहिए। यदि हम विचार-पूर्वक देखें तो विदित होगा कि ऐसे कई

साधन हैं जो हमें इस दुस्तर कार्यमें सहायता दे सकते हैं और विशेषता तो यह है कि ये बहुधा सरलतासे प्राप्त हो सकते हैं। देखो, यदि मनुष्यके चरित्रका सच्चा अवलोकन करना है तो वे तुच्छ बातें देखो जिन्हें वह बिना दीर्घ विचार किये ही करता है। जीवनकी छोटी छोटी बातें—यथा उसकी चाल-ढाल, उसकी मित्रता, उसके पहिनाव और उसके बोल-चालको—देखो। उसके कुल इत्यादि जाननेके बदले यदि हो सके तो थोड़ी देर उससे वार्तालाप करो। उसके महत्व-पूर्ण कार्योंके अवलोकन करनेकी आवश्यकता नहीं है। संभव है कि ये उसने दूसरोंकी सहायतासे किये हों। मनुष्य किसी व्यक्तिके चेहरेको देख कर ही उसके विषयमें इतना ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जितना उस मनुष्य द्वारा सम्पादित कुल कार्योंका इतिहास सुननेसे भी नहीं हो सकता। यदि मनुष्योंके चरित्रका परिचय उनकी बात-चीत और चाल-ढालसे न हो सकता होता तो संसारके व्यवहारोंमें बड़ी अड़चन होती।

मनुष्यके नैतिक-चरित्र और मस्तिष्क-शक्ति इन दोनोंके सम्बन्धमें कई बातें तो ऐसी होती हैं जिनका पता लगाना सरल है; परन्तु इन्हींके सम्बन्धमें कई गुण ऐसे होते हैं जिन्हें परखनेके लिए बहुत काल तक अवलोकन करनेकी आवश्यकता होती है। किसी मनुष्यमें हाजिर-जवाबी, गहरापन अथवा तर्कना-शक्ति है या नहीं, यह सरलतासे जाना जा सकता है; रन्तु उसमें किसी वस्तु-विशेषका अनुसंधान करते समय दोनों ओरके प्रमाणोंको तौलने और तदनुकूल मन्तव्य स्थिर करनेकी शक्ति है या नहीं, यह परखना कठिन है। किसी मनुष्यमें व्यावहारिक कार्य-निपुणता है या नहीं, यह जाननेके लिए उसके साथ अधिक सहवासकी आवश्यकता है। इसी भाँति उच्च विचार-शक्ति और नैतिक बल किसी व्यक्तिमें है अथवा नहीं, यह बात भी सरलतासे नहीं जानी जा सकती।

इसी भाँति मनुष्यके अहङ्कार, स्वार्थ-बुद्धि और चतक्कड़पनका पता शीघ्र पाया जा सकता है। उस मनुष्यके सत्यताके विषयमें कैसे भाव हैं, यह बात उसके तुच्छ तुच्छ कार्योंसे विदित हो जाती है। इसके विपरीत अमुक व्यक्ति क्रोधी या सहनशील है, उसमें आत्म-संयम है या नहीं, इसको जाननेके लिए समयकी अधिक आवश्यकता होती है। मनुष्यको जो जो बातें स्वभावसे ही प्रिय हैं उनमेंसे अधिकांश शीघ्रतासे जानी जा सकती हैं। परन्तु कितनी ही बातें ऐसी होती हैं जो कि मनुष्यको भली लगती हैं; परन्तु उनके विषयमें स्पष्ट रीतिसे वह अपने भाव कभी प्रकाशित नहीं करता। इसी भाँति हृदयके गूढ़ भावोंका पता लगा लेना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। भिन्न भिन्न समाजोंमें कई भावोंको प्रगट करनेकी रीतियाँ भिन्न भिन्न हैं। इसी भाँति हर एक व्यक्तिमें कई खास भावोंके प्रकट करनेके साधन विलक्षण ही होते हैं।

मनुष्यके स्वभावकी परख करनेमें अक्सर भूलें हो जाती हैं। विशेष कर उस समय जब किसी व्यक्तिसे उसके अहङ्कारके कारण हम अप्रसन्न हो जाते हैं। यदि ऐसा मनुष्य मीठी मीठी बातें करके हमारे चित्तको प्रसन्न भी करना चाहे और हमारी प्रशंसा भी करे तो हम यह समझते हैं कि वह हमारा अपमान कर रहा है। कई मनुष्योंके ऐब तो शीघ्रतासे निकल पड़ते हैं; परन्तु वे अपने गुण इतनी जल्दी प्रकाश नहीं करते। ऐसे मनुष्योंने ज्यों ही अपने बुरे स्वभावका परिचय दिया कि हम उनसे डर जाते हैं और फिर हम स्वप्नमें भी कभी ऐसा विचार नहीं करते कि दुष्ट प्रकृतिके मनुष्योंमें भी दयालुता रहती है।

जब किसी मनुष्यका स्वभाव हमारे स्वभावके बिलकुल विपरीत होता है तो उसकी परख करना, उसके गुणोंका आविष्कार करना हमारे लिए बिलकुल असंभव हो जाता है। रूखी प्रकृतिका मनुष्य प्रसन्न-चित्त और हँसोड़ व्यक्तिको कैसे भा सकता है!

मनुष्यके स्वभावसे भली भाँति परिचित हो जाना कोई हँसी-खेल नहीं है। जिस समय दो मित्र आपसमें एक दूसरेके स्वभावसे अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं, उन्हें मित्रताका अनुपम आनन्द आने लगता है, उनके मन और प्राण एकसे हो जाते हैं। उनमें सिर्फ छाया हीका अन्तर रहता है। परन्तु जब दुर्भाग्य-वश किसी एककी भूलके कारण उनमें असमंजस हो जाता है तो वे भली भाँति परिचित नहीं हो सकते हैं। मित्रों हीमें क्यों, ऐसा असमंजस कभी कभी प्रगाढ़ सम्बन्धियोंमें भी हो जाता है। उस समय कुटुम्बका सारा सुख किरकिरा हो जाता है। कहाँ तो दिलोंके मेलका वह स्वर्गीय सुख और कहाँ यह दिन-रातकी खट-खट ? जोड़ीमेंसे एकको भासता है मानों मित्रको मना लेना असंभव ही है। मानों सहानुभूतिने उसके हृदयसे विदा ही लेली है। ऐसे समयमें दुनियाके सारे व्यवहार निरानन्द हो जाते हैं। सिनामिटोग्राफकी पुतलियोंके माफिक ऐसे व्यक्ति निर्जीव होकर अपने दैनिक कार्योंको किया करते हैं अथवा नाटक-पात्रोंकी नाई कंठस्थ पाठको पढ़नेमें अपने समयको व्यतीत कर देते हैं।

परोपकार।

यदि सच पूछो तो हमारे चहुँ ओर एक दो नहीं सैकड़ों दृश्य ऐसे हो रहे हैं जिनमें हमारी परोपकार बुद्धिको योग देना नितान्त ही आवश्यक है। परन्तु हम अपने जीवनके अधिकांश भागको धन और ज्ञानके सम्पादनमें ही व्यतीत कर देते हैं। हमारे सब उपाय स्वार्थ-पूर्ण होते हैं। हमारा एक मात्र ध्येय सांसारिक उन्नति ही है। हम अपना काल ऐसी क्रूरताओंमें व्यतीत कर देते हैं जिनका प्रतिकार करना हमारी शक्तिसे

निमित्त करनेके लिए प्रस्तुत हो सकते हों ? क्या इनकी सांसारिक स्थिति और योग्यताके अनुसार कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसको ये निस्वार्थ-बुद्धिसे कर सकें ? यदि सचमुच ही तुम्हें मनुष्य-जातिसे प्रेम है तो एक-बार अपने मनसे भी यही प्रश्न करो। तुरन्त ही तुम्हें कोई-न-कोई उत्तर अवश्य मिलेगा। निदान उसी कार्यको, जिसके विषयमें तुम्हारा चित्त बोलता है, करनेमें भिड़ जाओ। यदि तुम यह सोचोगे कि भविष्यमें कोई उत्तम अवसर प्राप्त होने पर उसे प्रारंभ करोगे तो हमेशा तुम सिर्फ घड़ियाँ ही गिनते रहोगे। इसी कारण मनुष्य-जातिके कल्याण-वृद्धिके किसी भी कार्यको निश्चित करके उसके विषयमें पुस्तकें पढ़ो। दूसरे महात्मा उसे किस भाँति सम्पादन कर रहे हैं, इस बातका ज्ञान प्राप्त करो और स्वतः उसके विषयमें विचार करो। ऐसा करनेसे देखो तुम्हारे हृदयमें उस कार्यके निमित्त कैसी उत्सुकता चढ़ती है। देखो, जिस देशको तुमने कभी आँखों नहीं देखा और न जिसके विषयमें तुम्हें कुछ ज्ञान ही है उसका नक्शे पर तुम कैसे वैराग्य-भावसे देखते हो। उँगली उसके चारों ओर इस भाँति फिर जाती है मानों सिर्फ वह कागजका टुकड़ा ही हो। इसके विपरीत जिस मुल्क और जिलेको तुमने देखा है, जिसमें तुमने यात्रा की है उसके स्मरण मात्र हीसे तुम्हें कैसा आनंद होता है। ठीक ऐसा ही परोपकारके कार्योंमें भी जानो। जिस कार्यके विषयमें तुमने कुछ भी विचार नहीं किया, जिसकी शैलीके ऊपर कुछ भी मनन नहीं किया उससे यदि उदासीनता न हो तो और क्या हो ? इसके विपरीत यदि किसी विषयका अच्छा ज्ञान सम्पादित कर लिया जाय और उसके विषयमें अनुसंधान भी किया जाय तो उस विषयसे आपको स्वतःप्रेम होने लगेगा। फिर इस बातकी शिकायत करनेका मौका आपको न मिलेगा कि कार्य किस भाँति प्रारंभ करें। जरा उन पहलवानोंकी ओर तो देखो जो कुश्ती और अखाड़ेमें ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं।

शतरजके खिलाडियोंको देखो जो अपने खेलमें इतने मस्त रहते है कि उन्हें उसके सामने कुछ नहीं सूझता। यदि अखाडा और शतरज मनुष्यके चित्तको इस भॉंति मोहित कर सकती हैं तो निस्सदेह परोपकारके कृत्योंका आकर्षण अवश्य ही अधिक होना चाहिए। क्या सजीव प्राणियोंकी हृदय द्रावी पुकार 'प्यादे और वजीर की' चालसे अधिक चित्ताकर्षक नहीं है ?

बहुतसे मनुष्य ऐसे भी है जिनका हृदय जातिके दु खोंको देख दयासे परिपूर्ण तो अवश्य हो जाता है, परन्तु उसका असर इतना तीव्र नहीं होता कि उनको अपनी सकीर्ण परिधिसे बाहर निकाल कर्तव्य-पथ पर आरूढ करदे। ऐसे मनुष्य सोचते है, कहॉं मनुष्य जातिका सम्मिलित दु'खसमूह और कहॉं एक क्षुद्र व्यक्तिका साहस। भाई अपने अकेलेके करनेसे क्या हो सकता है। यदि अधिक हुआ तो विचारोगे मनुष्य-जाति जिस भॉंति धीरे धीरे उन्नति कर रही है यदि वही क्रम जारी रहा तो कुछ समयमें ये दु ख स्वत दूर हो जायँगे। इस भॉंति इस प्रकारके मनुष्य अपना समय या तो दर्शककी नाईं व्यतीत करना चाहते है अथवा ऐसे अवसरकी प्रतीक्षा करनेमे जब कि बिना परिश्रम किये ही कार्य सफल हो जाय।

ससारमें यद्यपि हित साधन करनेके अवसर नित्य ही प्राप्त होते रहते है, परन्तु इनका उपयोग करनेके लिए हमें प्रस्तुत रहना चाहिए। यदि हम चुपचाप बैठे रहें और मौकेकी बाट जोहते रहें तो निश्चय समझिए कि अवसर कभी प्राप्त न होगा। परोपकार साधनके लिए कर्तव्यशीलता और सिलसिलेसे काम करना होगा। यदि तुम दूधका प्याला पीकर पेट फुलाये तकियाके सहारे पडे पडे ऑंख मींच कर ही परोपकार करना चाहते हो तो तुमसे कुछ भी न बन पडेगा।

जब हम विशेष धनवान और ऐश्वर्यशाली हो जायँगे तब परोपकार करनेकी ओर ध्यान देंगे, ऐसा विचार चित्तमें भूल कर भी न लाओ।

परोपकारका मनुष्यकी दरिद्रता अथवा ऐश्वर्यसे सच पूछो तो कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरे वर्तमानमें यदि तुम दूसरोंके उपकारार्थ कार्य करनेमें पूर्ण योग नहीं दे सकते तो कुछ हानि नहीं; परन्तु उसका प्रारम्भ अवश्य कर दो। जो मनुष्य यही सोचता रहता है कि धनवान् हो जाने पर मैं बहुत-सा द्रव्य दान करूँगा, अपने विचारानुकूल काम करनेके लिए उसे अवसर ही प्राप्त नहीं होता। शत्रु जिस समय सामने आ-उपस्थित होता है उस समय यदि कोई मनुष्य तलवार चलाना सीखना प्रारम्भ करे तो कैसा हास्य-प्रद दृश्य उपस्थित होगा। याद रक्खो किसी कार्यमें प्रवृत्त होनेके पहले ही अपने सिद्धान्तोंको कायम कर लेना ही बुद्धिमानी है। इसी भाँति जब तक परोपकार करनेका सुअवसर तुम्हारे हाथ नहीं आया है उसके करनेकी प्रारम्भिक रीतियोंका मनन कर लेना बहुत ही अच्छा होगा। ऐसा करनेसे मौका हाथ आते ही तुम्हें कार्य करनेमें बिलकुल अड़चन न होगी।

अपने मुँह मियाँमिट्ठू बननेवाले कोई बगुला-भक्त शायद पूछ बैठे कि इस भाँति परोपकारमें लगे रहनेसे लोगोंको अपना रोजगार करनेके लिए समय कैसे प्राप्त होगा और मनुष्य अपना निर्वाह किस भाँति कर सकेंगे? प्रत्येक विचारशील व्यक्ति तुरन्त ही कह देगा कि इस प्रश्नमें कुछ भी तथ्य नहीं है। यह बात निरी झूठ है कि मनुष्यको जीवन-निर्वाह करनेके लिए दिन-रातके चौबीसों घंटे अपने व्यापारमें बँधे रहनेकी आवश्यकता है। यदि सच पूछो तो मनुष्य अपना जितना समय इधर उधरकी गप्पें मारने, झूठी कल्पनायें करने और आलस्यमें बिता देते हैं यदि वही समय लोक-हितके कार्योंमें व्यतीत किया जावे तो अत्यन्त दुस्तर कार्य भी भली भाँति संपादन किया जा सकता है।

यह बात हम भी स्वीकार करते हैं कि परोपकारके कार्योंमें निरत रहनेके कारण संभव है कि कभी कभी मनुष्य अपनी यथेच्छ सांसारिक उन्नति

करनेमें सफल न हो। हम मानते हैं कि सांसारिक उन्नतिका मूल कारण किसी-न-किसी विषयमें असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न कर लेना ही है। यदि आपने किसी एक भी कला-कौशल्यमें कुशाग्र बुद्धिका परिचय दे दिया तो समझ रखिए आपकी स्थिति बहुत कुछ सुधर जायगी। किसी विषयमें यथेष्ट उन्नति होना तब तक असंभव है जब तक कि उस कार्यमें सच्चे और एकाग्र मनसे कार्य न किया जाय। चित्तकी स्थिरता रखनेके लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी झंझटोंको न बढ़ावे। परन्तु अपने समाजकी, देश-भाइयोंकी और मनुष्य-जातिकी भलाईके लिए इतना स्वार्थ-त्याग करनेके लिए हर-एक विचारशील मनुष्य तैयार रहेगा। जिस व्यक्तिको यह विश्वास है कि समाजकी रचना परमात्माने इसी लिए दुःखमय की है कि मनुष्यको परोपकार करनेका अवसर मिले वह अपने स्वार्थ-पूर्ण व्यापारोंसे, चाहे वे कैसे ही आवश्यक क्यों न हों, कुछ समयके लिए छुट्टी लेना अपना कर्तव्य समझेगा। यह भी स्मरण रहे कि परोपकारका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें अपने कुटुम्ब-सम्बन्धियोंसे लेकर संसारके प्राणी मात्र तकको स्थान प्राप्त है। यदि कुछ नहीं तो अपने कुटुम्बियोंके हितको ही साधन करो। परन्तु यह जान रक्खो कि सिर्फ हृदयको दयार्द्र करनेसे काम न चलेगा। इसी भाँति जो कार्य तुमारे सामने हो रहा है उसमें 'हाँ हूँ' कर देनेसे अथवा थोथी बातें बनानेसे भी कुछ फायदा नहीं है। इसी भाँति किसी परोपकारके कार्यमें थोड़ी बहुत टालम-टूल सहायता देना भी अधिक प्रशंसनीय नहीं है। अपने बन्धुओंका हित-साधन करनेके लिए हमें कठिन परिश्रम करना होगा। जिस भाँति अपने कार्योंके विषयमें हम खूब सोचते विचारते हैं और सच्चे मनसे दिनको दिन और रातको रात न गिन कर कार्य करते हैं उसी भाँति हमें सार्वजनिक कार्योंमें योग देना होगा। इतना ही नहीं, हमें बड़ी धीरता और सहिष्णुतासे काम लेना पड़ेगा। इन कार्योंकी सिद्धिके निमित्त कभी कभी हम अपनी

प्यारीसे प्यारी इच्छाओंका बलिदान करना पड़ेगा। हमारे धर्ममें भूखोंको आहार-दान देने तथा रोगियोंकी परिचर्या करनेके विषयमें जो कुछ लिखा गया वह भी तो सार्वजनिक कार्योंमें योग देना ही है।

हमारा कर्तव्य केवल मनुष्य-जातिके प्रति सहानुभूति दिखाने मात्र ही नहीं है। परन्तु हमें पशुओंकी भी दया करना चाहिए और उनके दुःखोंका निवारण करनेके लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। वे लोग जो यह मानते हैं कि पशुओंमें आत्मा नहीं है और न उनमें सुख-दुखको वेदनेकी शक्ति है, सचमुच बड़ी भूल कर रहे हैं। परन्तु यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो भी उनकी इस अशक्तता और असहायताके कारण वे और भी अधिक दयाके पात्र समझे जाने चाहिए। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो उन छोटे छोटे जीवधारियोंके अल्प जीवनको ईर्षाकी दृष्टिसे देखेगा? हमें सोचना चाहिए कि इन बेचारोंको जो थोड़ासा समय और सुख प्राप्त हुआ है उसमें बाधा डालनेका किसीको क्या अधिकार है? हमको संसारके प्राणी मात्रके प्रति भूतदया प्रकाशित करनी चाहिए। उन चौपदोंकी, जिनको कि हम अपने आरामके लिए रखते हैं, हमें पूरी सँभाल रखनी चाहिए। इस विषयमें इतना खुलासा लिखनेकी मंशा यह है कि इससे वे लोग शिक्षा प्राप्त करें जो जानवरोंको कष्ट देते हैं।

कई मनुष्य लोक-हँसाईके भयसे पशु-कष्ट-निवारण कार्योंमें योग नहीं देते। निस्संदेह इंग्लिस्तान सरीखे देशोंमें मांस भोजनकी प्रधानता होनेके कारण लोग पशु-वध रोकनेकी चेष्टा करनेवालोंकी हँसी उड़ाया करते हैं; परन्तु धर्म-प्रधान भारतमें यदि कृषिके मुख्य साधन चौपायों पर इतना अन्याय हो और सहृदय लोगोंके कानोंमें जूँ तक न रेंगे तो बतलाइए इससे बढ़कर अनर्थ और क्या होगा? समझ रक्खो परोपकारमें जितना समय व्यतीत किया जाता है वही सार्थक है। अंतिम समयमें यही काम आवेगा।

कुटुम्ब-शासन ।

समाजको व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिए विवाह-संस्कारकी भारी आवश्यकता है। समाजका संगठन जिन नियमोंके आधार पर है उनका यथाविधि पालन उन जातियोंमें कभी हो ही नहीं सकता जिनमें विवाहके नियम सुसंस्कृत नहीं हैं। सच पूछो तो मनुष्य-हृदयमें प्रकृतिने प्रजा-वृद्धिके हेतु ही काम-वासनाकी सृष्टि की है—जिसमें जातियोंकी परिपाटी बराबर चली जाय—इसी लिए सन्तानोत्पत्तिकी वासना मनुष्यके हृदयमें होती है। इस वासनाकी संतृप्तिमें आनन्द-प्राप्ति होनेका भी कारण सिर्फ यही है। परन्तु इस आनन्दके बदलेमें मनुष्यके ऊपर भार भी कुछ कम नहीं रक्खा जाता। समाज उसके ऊपर उस सन्तानके भरण-पोषण और शिक्षाकी जिम्मेदारी रख देती है। बस काम-वासनाकी संतुष्टिके बदलेमें जो कुछ कर्तव्य सिर पर धारण करना होते हैं उनकी योग्य व्यवस्था करनेके लिए ही समाजके अगुओंने विवाहके नियम बनाये हैं। सभ्यताकी वृद्धिके लिए, मनुष्य-जातिके सुखोंकी मात्रा बढ़ानेके लिए इन नियमोंकी बड़ी आवश्यकता है। हम देखते हैं कि संसारकी ईर्षा, कलह और दुःखका आधा भाग स्त्रियोंके सम्बन्धसे ही होता है। असभ्य और अर्द्धसभ्य जातियोंमें विवाह-संस्कार या तो प्रचलित ही नहीं होता अथवा उसके नियम ही व्यवस्थित नहीं रहते। इसी लिए वे जातियाँ अपना सुधार नहीं कर सकतीं। भावी संतानको शिक्षित बनानेकी गुरुतर जवाबदेही बिना विवाह-शृंखलामें बँधे हुए अपने सिर पर कौन व्यक्ति लेगा?

स्मरण रहे कि विवाहके कारण व्यक्तिके ऊपर कर्तव्यका बड़ा भारी बोझ आ जाता है। इसी लिए विवाहको हँसी-खेल समझना बड़ी मूर्खता है। जिस समाजने विवाहको एक सामाजिक संस्कार ही नहीं, परन्तु ईश्वरदत्त विधान समझ रक्खा है उस समाजके व्यक्ति यदि विवाहको गुड्डि-

योंका खेल समझें तो आश्चर्य ही है। जरा विवाहकी जिम्मेदारियोंको देखो। सबसे पहला कर्तव्य तो अपनी स्त्रीके भरण-पोषणका है। जिस भाँति तुम्हें अपनी शारीरिक आवश्यकतायें पूरी करना पड़ती हैं उसी भाँति उसकी भी करना होगी। देवताओंकी साक्षी-पूर्वक तुमने उसको धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंमें अपना साथी माना है। विवाहके मंत्रोंका एक-बार ध्यान-पूर्वक मनन करनेसे कार्यकी गुरुताका कुछ ध्यान हो सकता है। कितना अच्छा हो यदि माता-पिता अपनी सन्तानका विवाह करनेके पहले एक-बार इसे पढ़ लें। शिशु-पालनका कार्य भी कुछ आसान नहीं है। द्रव्यके सिवाय इन सब कार्योंको सम्पादित करनेके लिए बुद्धिकी भी आवश्यकता है। संतानको शिक्षित करना, उसे जीवन-संग्रामके योग्य बना देना, इस कार्यके समान कठिन दूसरा और कौन कार्य है? दम्पति अपने इन कर्तव्योंको भली भाँति कर सकनेमें समर्थ हो सकें, इस लिए इस विषयमें उन्हें जितनी शिक्षा मिल सके प्राप्त करना चाहिए। सुशिक्षित पुत्र-पुत्रियोंका तैयार कर देना यही समाजके ऋणसे मुक्त होना है। इसके विपरीत भीरु, निर्बल और अपढ़ सन्तान पैदा करनेके समान दूसरा पाप कोई नहीं। इस विषयमें सावधान रहना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। कविने सत्य कहा है—

> हाले फूले हम फिरें, होत हमारो ब्याव।
> तुलसी गाय बजायके, देत काठमें पाँव॥

परिवारको शिक्षित और सुखी बनानेके हेतु सिर्फ द्रव्य हीकी आवश्यकता नहीं, बुद्धि और चतुराई भी चाहिए। केवल मात्र द्रव्यकी प्रचुरता तो बड़ी अनिष्टकर है। यथार्थमें कुटुम्ब-शासन राज्य-शासनके समान एक कला ही है। लोग देखते हैं कि अमुक मनुष्य कितना सुखी है, उसके कुटुम्बमें कितना प्रेम और सौहार्द है, पुत्र-पुत्रियाँ कैसे सुशील और आज्ञाकारी हैं—यहाँ तक कि नौकर चाकर भी अपने तईं कुटुम्बि-

योंकी नाई समझते हैं। इन सब बातोंको देख लोग आश्चर्य करते हैं, उसके भाग्यको सराहते हैं और कभी कभी ईर्षासे दुखी भी हो जाते हैं। परन्तु इस बातका वे स्वप्नमें भी विचार नहीं कर सकते कि कुटुम्ब-शासन भी एक कला है। उसमें चतुराई प्राप्त कर लेना मनुष्यका कर्त्तव्य है; और वह मनुष्य इसी लिए सुखी है कि उसको कुटुम्बका यथाविधि शासन करना मालूम है। सच पूछिए तो कुटुम्ब एक छोटा-सा राज्य ही है। राज्य शासन क्या है? समाजके इतने बहुतसे भिन्न भिन्न कुटुम्बोंकी भलाईके लिए जो नाना प्रकारके साधनोंकी आयोजना की जाती है वही तो राज्य-शासन है। अंतर दोनोंमें सिर्फ इतना ही है कि राज्य-शासनके प्रश्नोंका क्षेत्र बहुत ही विस्तीर्ण है। स्मरण रहे कि देशके शासकको गृह-स्वामीकी अपेक्षा अधिकार भी अधिक प्राप्त हैं। आश्चर्यका विषय है कि कुटुम्ब-शासन सरीखे महत्त्वके विषयकी ओर लोगोंका ध्यान इतना कम है। इसकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए सच पूछो तो कोई साधन ही नहीं है। पुस्तकोंमें बहुधा इसकी चर्चा नहीं होती। इसकी शिक्षाके लिए मौखिक साधन भी प्राप्त नहीं होते, इसी लिए वर्तमानमें अधिकांश कुटुम्ब दुःखके आगार ही हैं। भाई भाईमें, पिता-पुत्रमें, मालिक और चाकरोंमें—जिधर देखिए उधर ही—वैमनस्य नजर आता है। कुटुम्बकी स्त्रियोंके विषयमें तो कहना ही क्या है। इनके आपसी कलहके मारे तो नाकों दम हो जाता है। कितने दुःखका विषय है कि जीवन-संग्रामसे व्यथित होकर हम तो विश्रामके लिए कुटुम्ब वृक्षकी शरण लें, परन्तु यहाँ प्राप्त होते ही गृहस्थी-सम्बन्धी कलहके मारे हमारा संताप दूना हो जाय। कुटुम्बका शासन करनेके लिए जिन हिकमतोंकी जरूरत होती है उनका उल्लेख करना ही इस लेखका अभीष्ट है।

स्मरण रहे कि मनुष्य स्वभावको परख लेना बड़ा ही दुस्तर कार्य है? प्रबंधकी पहली आवश्यकता यही है कि जिन मनुष्योंसे काम लेना है

उनके स्वभावसे भली भाँति परिचय प्राप्त करना चाहिए। कुटुम्बमें कई मनुष्य होते हैं और हर एक मनुष्यका स्वभाव भिन्न भिन्न होता है। यदि कुटुम्बके प्रत्येक व्यक्तिके स्वभावसे गृह-स्वामी भली भाँति परिचित न होतो बतलाइए प्रत्येककी प्रकृतिके अनुकूल कार्य उससे किस भाँति लिया जा सकता है? किसी मनुष्यके स्वभावसे परिचित होनेके लिए उसके कार्यों, उसकी मानसिक वृत्तियों और आदतोंका भली भाँति अवलोकन करना पड़ता है। गृह-स्वामी बहुधा समझते हैं कि कुटुम्बियोंके स्वभावसे इस भाँति परिचित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इस तरह बारीकीसे उनका स्वभाव परखनेकी दिक़त उठानेको वे निस्सार समझते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। लोग समझते हैं गृह-स्वामीकी शक्ति तो अमर्यादित है, नियमोंको बना डालना तो उसके बायें हाथका खेल है। ऐसे व्यक्ति मनुष्य-स्वभावसे अपरिचित ही हैं। वे यह नहीं जानते कि मनुष्य-जाति स्वभावसे ही अमर्यादित शासनकी वैरी है। पुत्र, पुत्री अथवा स्त्री ही क्यों न हो, आपके प्रति उसका कितना ही प्रेम क्यों न हो, आपकी वह कितनी ही आज्ञाकारी क्यों न हो, आपकी उच्छृंखलता उसको थोड़े समयमें आवश्य खँसने लगेगी। इसी लिए जो नियम बनाये जायँ खूब सोच-विचार कर बुद्धि-पूर्वक बनाये जायँ। जिस भाँति राज्य-प्रबंधमें शासित और शासकका एक-मत ही कल्याणकारी है उसी भाँति गृह-शासनमें भी कुटुम्बियोंकी सम्मति ले लेना अच्छी बात है। गृह-शासनकी त्रुटियोंकी अवहेलना करना और उन्हें और सांसारिक कार्योंकी अपेक्षा तुच्छ समझ कर उनकी उपेक्षा करना भी मूर्खता ही है। रोगका इलाज फौरन कर देना ही बुद्धिमानी है। अन्यथा वह अधिक दुखदायी और असाध्य हो जाता है। घरके मालिकको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि उसके अन्यायके विरुद्ध कुटुम्बी जन संकोचके कारण संभव है कि चूँ तक न करें, पर ऐसी दशामें उसके अत्याचारकी मात्रा बढ़ती चली जाती है। निदान ऐसी आग सुलगते सुलगते

सारे कुटुम्बका सत्यानाश कर डालती है । प्रतिदिन मनुष्यको अपने नैमित्तिक कार्य करने ही पड़ते हैं । ये कार्य जल-तरंगोंकी नाईं एक दूसरेके पीछे आते रहते हैं और मनुष्य इनको यथा समय करता है। परन्तु इनमेंसे अधिकांश ऐसे रहते हैं जिनके विषयमें अधिक शोध-विचार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। लोगोंकी एक भूल यह है कि वे अपने गृहस्थी-सम्बन्धी कार्योंको उतने महत्त्वकी दृष्टिसे नहीं देखते जितना कि चाहिए। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि सबसे भयानक रोग वे ही हैं जिनके निदान शीघ्रतासे भली भाँति नहीं जाने जा सकते। इसी प्रकार गृहस्थीमें भी संकोचके पर्देके भीतर रहनेके कारण लोगोंके भाव विदित नहीं हो सकते। परन्तु समय पर ये ही तुच्छ भाव ऐसे भयानक हो जाते हैं कि फिर इनका इलाज असंभव हो जाता है। इसी लिए इनकी लापरवाही करना मूर्खता है। प्रत्येक चतुर गृहस्थका कर्तव्य है कि अपने कुटुम्बियोंके भावोंका सदा विचार रक्खे।

गृह-स्वामीके शासनकी मर्यादा और शक्ति बहुत विस्तीर्ण है। प्रायः सब कुटुम्बके लोग छोटे बच्चोंसे लेकर बड़े-बूढ़े तक छोटी छोटी बातोंमें उसका भय खाते और उसकी आन मानते हैं। परन्तु कुटुम्बके जेठे अक्सर इस बातसे असंतुष्ट रहते हैं कि कुटुम्बी जन उनकी आज्ञा नहीं मानते। जिधर देखिए उधर ही यही रोना सुन पड़ेगा। बेटा बे-कहा हो गया, बहू तो कुछ सुनती ही नहीं, यही शब्द प्रत्येक जेठेके मुँहमें रहते हैं। इसका कारण एक तो यह है कि मनमें आप इनको कितने ही आदरकी दृष्टिसे क्यों न देखिए जब तक आप अपने व्यवहार द्वारा इनके महत्त्वका परिचय न देंगे तब तक ये संतुष्ट न होंगे।

हर-एक व्यक्तिमें—चाहे वह कितनी ही मूर्ख क्यों न हो—प्रकृतिसे ही इतनी बुद्धि रहती है जिसके द्वारा वह जान लेता है कि अपनेसे बड़े और बुद्धिमान मनुष्योंके सामने कौनसे विचार या कार्य करना चाहिए और

कोनसे नहीं। खास कर जेठोंके सामने एक किस्मका संकोच मालूम होता है जिसके कारण हम उनके सामने खुल कर व्यवहार नहीं कर सकते; परन्तु इसके विपरीत लोग समझते हैं कि कर्तव्याकर्तव्यका विचार बिना शिक्षा और अनुभवके हो ही नहीं सकता। इसी लिए जब जेठे मनुष्य कुटुम्बके और और व्यक्तियोंका व्यवहार देखते हैं तो वे समझते हैं कि उनमें समझ नहीं है और वे उनके साथ बिना लिहाज-संकोचके अमर्यादित व्यवहार कर रहे हैं। ऐसा विचार कर गृह-स्वामी अपने अधिकारका दुरुपयोग करने लगते हैं और कुटुम्बियोंको निष्कारण ही तंग करने लगते हैं। फल इसका यह होता है कि वह निष्कपट व्यवहार, जिसके द्वारा हृदय-स्थित भावोंका सच्चा प्रकाश होता है, ऐसे कुटुम्बमें स्वप्नमें भी नसीब नहीं होता। सारे कुटुम्बके लोग एक दूसरेकी ओर मानों रंगीन काचमें देखते हैं। कहाँ तो घरके जेठेकी कुटुम्बियोंके तुच्छ तुच्छ भावोंके विषयमें सावधानी और कहाँ यह कपट दृश्य! कई लोगोंको प्रतीत होता है कि अपने आश्रितोंका शासन करनेके लिए इस भाँति सहृदय व्यवहारकी आवश्यकता ही नहीं है। निस्संदेह यदि 'जबरदस्तका ठेंगा सिर पर' इस उक्तिके अनुसार ही गृह-शासन चलाया जाय तो इस सब प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु स्मरण रहे कि अत्याचार-पूर्वक शासनका फल कभी सुंदर न होगा।

अपने आश्रितोंको मर्यादासे अधिक दबाना बुद्धिमानी नहीं है। सब बातोंकी हद होनी चाहिए। यदि बिना समझे-बूझे किसी मनुष्यको उसकी इच्छाके विरुद्ध दबाते चले जाओगे तो किसी समय वह मनुष्य तुम्हारी आज्ञासे बाहिर हो जायगा और साफ इंकार कर बैठेगा। हमें अपने कुटुम्बियोंसे मोल लिये हुए गुलामोंकी नाई व्यवहार न करना चाहिए। इस बात पर हमेशा दृष्टि रक्खी जाय कि किसी कामके करनेमें मनुष्यका मन मैला न हो जाय, उसका चित्त न दुखने पावे। यदि चित्त दुखा

और काम भी हुआ तो कुछ मजा न आवेगा। परमात्माने प्रत्येक मनुष्यको भला और बुरा विचारनेकी शक्ति दी है। इस विषयमें प्रत्येक मनुष्यको समान अधिकार प्राप्त है। विचार स्वातंत्र्यमें बाधा देनेसे मनुष्यमें विद्रोहकी अग्नि भभक उठती है। इसी लिए जान लेना चाहिए कि भले और बुरेके विचारमें आदेशसे ही काम न चलेगा। जिस बातको तुम भली समझते हो, संभव है कि तुम्हारा पुत्र उसीको बुरी समझे। ऐसी दशामें यदि तुम अपने पदके अभिमानमें आकर अपने पुत्रके विचारोंको सिर्फ अधिकारके बलसे ही बदलना चाहो तो कभी कृत-कार्य न हो सकोगे। कई आचार और व्यवहार निस्संदेह ऐसे हैं जिनका उपयोग करनेके लिए अधिकार द्वारा लोग बाध्य किये जा सकते हैं; परन्तु किसी मनुष्यको सिर्फ भयके द्वारा सदाचारी बनाना असंभव ही है।

गृह-स्वामीका कर्तव्य है कि अपने अधिकारको मर्यादाके भीतर रक्खे और अपने आदेशोंको विचारकी तराजू पर तोल लिया करे। घरमें जितने मनुष्य हैं उन सबके हक़ एक समान नहीं हैं। भाई और पुत्रके साथ एक-सा व्यवहार नहीं हो सकता। इसी भाँति नौकर-चाकरोंसे भिन्न व्यवहार करना होगा। कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी कार्यको करना गृह-स्वामीको आवश्यक प्रतीत होता है। संभव है कि दूसरे कुटुम्बियोंको वह काम करना भला न लगे। ऐसी दशामें साफ साफ कह देना चाहिए कि अमुक काम तो करना ही होगा। परन्तु यदि गृह-स्वामी ऐसे मौके पर यह भी चाहे कि सब कुटुम्बी एक स्वरमें उसके कामकी प्रशंसा करें तो अनुचित है। ऐसी आशा करना मानों अपने आश्रितोंको कपट-व्यवहार सिखाना ही है। यदि किसी विषयमें गृह-स्वामी अपने कुटुम्बियोंकी सम्मति ले और किसी मनुष्यकी राय उसकी रायसे भिन्न हो तो उसे रुष्ट न होना चाहिए। न्यायकी तराजूमें राजा-रंक, छोटे-बड़े सभी एक समान हैं। यदि तुम्हारी इच्छा ही है कि अमुक कार्य अवश्य किया जाय तो उसे

मान लेना कुटुम्बियोंका कर्तव्य है। परन्तु यह कार्य उचित या अनुचित है यह प्रश्न दूसरा ही है और इसकी समालोचनासे तुम्हें अप्रसन्न न होना चाहिए।

सत्य और प्रेम ये दोनों गृह-शासन-रूप महलकी नींवके समान हैं। जिस कुटुम्बका मुखिया अपने शासनको सत्य और न्यायकी लगाम लगाये रहता है उस कुटुम्बमें कलह कभी फटकने भी नहीं पाता। यदि गृह-स्वामीके हृदयमें प्रेमका अधिकार न हो, यदि उसका शासन न्याय-विहीन हो तो उस कुटुम्बके व्यक्तियोंकी दशा अंधेर नगरीकी प्रजाके समान ही होती है। महात्मा तुलसीदासजीने कहा है—"मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पानको एक। पाले पोषे सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥"

कुटुम्बके शासनमें प्रेमका साम्राज्य बढ़ाना होगा। यदि कुटुम्बी जन आपसमें एक दूसरेके स्वभावसे परिचित होना चाहते हैं तो बिना प्रेमका सहारा लिये काम नहीं चल सकता। सबसे पहली बात तो सहानुभूति है। यदि कुटुम्बमें प्रेमका प्रवाह बढ़ाना है तो गृह-स्वामीका कर्तव्य है कि अपने कुटुम्बियोंसे सहानुभूति ही न रक्खे; परन्तु उनको समय समय उसका परिचय देकर उनके मनमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करावे। यदि अपने पुत्र-पुत्रियोंका चरित्र-गठन करना है तो माता-पिताका कर्तव्य है कि इनमें सत्य-प्रेमका बीज बोदें—भयकी नीतिके द्वारा यह काम करना असंभव है। प्रत्येक माता-पिताका अनुभव है कि यदि बालकसे कोई अनुचित कार्य हो जाय तो वह उसको इसी लिए स्वीकार नहीं करता कि कहीं उसको सजा न मिले। यदि सजाका भय न हो तो बालक ऐसी झूठ न बोले। लोग समझते हैं कि झूठ बोलनेवालेका अभिप्राय प्रायः धोखा देकर स्वार्थ-सिद्धि करना ही है। कभी कभी ऐसा भी होता है; परन्तु अधिकांश व्यक्ति किसी-न-किसी हानिके भयसे ही झूठ बोलना अंगीकार करते हैं। कुटुम्बियोंका अविश्वास करना, उनको कुटुम्ब-सम्बंधकी बातें न

बताना यह भी कुटुम्बकी फूटका एक प्रधान कारण है, इसके द्वारा कुटुम्बियोंका चित्त फटा-सा रहता है। वे घरके कामकाजमें चित्त नहीं देते और बहुधा आपसमें कानाफूसी किया करते हैं। यदि गृह-स्वामी अपने हृदयकी बातें अपने कुटुम्बियोंको नहीं बताना चाहता है, यदि उसके चित्तमें इनका विश्वास नहीं, तो बताइए कुटुम्बी जन अपने विचारोंको उसके प्रति क्यों प्रगट करने चलें ? वे उसका विश्वास काहेको करेंगे ? यह बात सबको विदित है कि जब तक आश्रितोंको इस बातका विश्वास न हो जाय कि मालिककी उन पर पूर्ण सहानुभूति है तब तक वे अपने हृदयकी बात कहनेमें हिचकते रहते हैं। अपने बड़ोंके सामने अपनी भूलोंकी आलोचना करना यह तो बड़ा ही दुस्तर कार्य है। यदि आपके पुत्रसे सचमुच कोई अपराध हो गया है तो आपके सामने आकर उसको स्वीकार करना और उसकी आलोचना करना यह बात बिना पूर्ण सहानुभूति और प्रेम हुए तो असंभव ही है। लाख लाख तरहकी बात करने पर भी जो बातें स्वीकार नहीं की जातीं उनको निधड़क कहलवा देना सचमुच प्रेम हीका काम है। भयका स्वप्नमें भी विचार न करके दोषोंकी आलोचना करना कितना उत्तम नैतिक गुण है। इस प्रकारकी नीतिका अवलम्बन करनेमें बालकोंका चरित कितना उन्नत होगा। ऐसे शासन द्वारा गृह-स्वामी अपने कुटुम्बको कैसी उत्तम शिक्षा दे सकता है।

स्मरण रहे कि गृह-शासनमें केवल प्रेम और सहानुभूतिसे ही काम न चलेगा। कुटुम्बी लोग समय पर कोई अपराध और भूलें करते ही हैं। उनको दुरुस्त करना और उसके लिए दंडका विधान करना भी कभी कभी आवश्यक होगा। दोषका निरीक्षण करने और तदनुकूल दण्डका विधान करनेके लिए न्याय और सत्य प्रयोजनीय है। पुत्र, पुत्री अथवा चाकर इनकी जो भूल तुम्हें दीख पड़े उसको साफ साफ कहनेमें कभी न

हिचकिचाना चाहिए । ऐसे समय संकोच करनेसे बड़ी हानि होगी । एक-बार संकोचित होकर अपने कर्तव्यसे च्युत होने पर दूसरी बार भी आपकी उस अपराधके रोकनेकी सहसा हिम्मत न होगी और अपराधी भी अपने तईं बे-लगाम समझ कर निश्चिन्त हो अपराध करनेमें प्रवृत्त हो जायगा । इस तरह दोनों पक्षकी हानी होगी । कई लोगोंका मत है कि घरके बड़ोंको कई अपराधोंकी ओर जान-बूझ कर आँखें मींचना पड़ती हैं, कई बातोंको देखी अनदेखी करना होती है । परन्तु इसका अभिप्राय यह न होना चाहिए कि जो बातें हमें नहीं भातीं उनको होती देख कर भी इस भाँति बहाना कर देना मानों हमने उन्हें देखा ही न हो, इस भाँति चित्तके विचारोंके विरुद्ध बातचीत अथवा क्रिया करना हानिकारक ही है । इस तरह कार्योंकी उपेक्षा करनेकी आदतसे कभी कभी बड़ा नुकसान होता है । वर्तमानमें ऐसी बातें भले ही तुच्छ हों, परन्तु उपेक्षा करनेसे ही कालान्तरमें ये बड़ी हानि-कारक होंगी । देखते अनदेखी करनेकी आदत कभी कभी तो बे-परवाहीके कारण भी पड़ जाती है । कुटुम्बी जन जो छोटे-मोटे कार्य करते हैं उनके प्रति निरपेक्ष भाव रखनेसे हानि ही है । लोग मुफ्तमें जरा जरा बातोंमें बड़ी बुराई मानने लगते हैं । इस लिए चाहे कार्य कितना ही तुच्छ क्यों न हो, अपराध कितना ही निर्जीव क्यों न हो, तुम्हें सदैव निर्भीकतासे काम लेना चाहिए । जो विचार तुम्हारे हृदयमें हों उनको प्रकाशित करनेमें कभी संकोच मत करो । ऐसा करनेसे सिर्फ गृहस्थीके कामोंमें ही हानि नहीं होती, स्वयं गृह-स्वामीको इसके द्वारा बड़ा भारी नुकसान होता है । ऐसा करनेसे वह कुछ समयमें आलसी हो जाता है । उपेक्षा, निदान, माध्यस्थ और फिर आलस्य ऐसा होते होते मनुष्य विचार करने तककी तकलीफ उठानेमें हिचकिचाने लगता है ।

कुटुम्बके आदमियोंको हर समय पर दबावमें बाँधे रखना भी अच्छा नहीं है । कभी कभी उन्हें अपनी इच्छानुकूल कार्य करनेकी स्वतंत्रता भी

अपराधके लिए लज्जित करना, अपराधीका उपहास उड़ाना यह विधान तो उपयुक्त नहीं है। ऐसा करनेसे संभव है कि बिगड़ा हुआ कार्य सुधार लिया जाय; परन्तु नैतिक चरित्रके ऊपर इस दंडका परिणाम खोटा होता है। उस व्यक्तिकी आदतमें निन्दा, हँसी अथवा प्रशंसा ही कर्तव्यकी कसौटी हो जाती है। इसके सिवाय इस दंडका योग्य परिमाण जान लेना भी बहुत कठिन है। फलतः दोषका निराकरण करनेके साथ साथ ही उसके द्वारा गुणका भी घात हो जाता है।

लोग प्रायः उत्तम कार्योंके लिए भी किसी किसीका उपहास उड़ाते हैं। यह निन्दनीय है। कभी कभी वस्तुका वास्तविक स्वरूप न देख कर हम ऐसे कार्योंकी ओर हँसने लगते हैं जो वास्तवमें स्तुत्य हैं। इस अपराधका फल यह होता कि कभी कभी प्रशंसनीय उत्तम आदतोंका जन्म भरके लिए नाश हो जाता है। इसी लिए बालकोंकी आदतोंके विषयमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। बालक आपके सम्मुख किसी कार्यके करनेकी सच्चे दिलसे प्रतिज्ञा करता है और आप घृणा-पूर्वक कह देते हैं तू क्या करेगा? तुझसे क्या हो सकता है? बतलाइए आपके इन वाक्यों-ने उसकी प्रतिज्ञा-रूप लता पर तुषारका काम किया या नहीं। इसी भाँति जो भूलें तुम्हारे कुटुम्बी-जन करें उनको बड़ी सावधानीसे सुधार दो। कहीं ऐसा न हो कि आपकी कटूक्तिसे उनका चित्त दुख जाय और वे निठुर न हो जायँ अथवा उनमें आत्म-ग्लानि न पैदा हो जाय। विशेष कर योग्य पुरुषोंको उनके दोष दिखाते समय अधिक सावधानीसे काम लिया जाय। इन लोगोंको अभी संसारका इतना अनुभव नहीं हुआ है कि सत्य विचारोंकी खोजके लिए मनुष्यको किस भाँति प्रयास करना पड़ता है। इनकी उम्र भी अभी इतनी नहीं है कि ये अपने जीवन-की ओर दृष्टिपात करके देख सकें कि मनुष्यके विचारोंमें कितना परि-वर्तन हो जाता है। भूलको परिमार्जित करते समय यदि इनको मालूम हो

जाय कि इनके विचार भी तो कुछ काल पेश्तर ऐसे ही थे, तो ये अपनी भूलके सुधारनेमें प्रवृत्त न होंगे। निम्न लिखित प्रयोगोंको प्रत्येक मनुष्य अपने गृह-शासनमें आजमा सकते हैं।

१ स्वतः नियमोंको जितना हो सके कम भङ्ग करे। अपने अवलोकन और परीक्षासे जो नियम उपयोगी प्रमाणित हो चुके हैं उनको भी रामबाण प्रयोगोंकी नाई निर्दोष न बतला दे।

२ अपनी रुचिके माफिक अपने कुटुम्बियोंकी इच्छाओंको बद्ध न कर दे।

३ दंड-विधानमें वह अपने क्रोधको शांत करके विचार करे—जो दंड निष्कारण दिया जा चुका है उसके परिष्कारके लिए तकलीफ उठानेमें न हिचकिचावे।

४ जो उसे आज्ञा-भंगका अपराध प्रतीत होता है वह कहीं अपनी आज्ञाको योग्य रीतिसे प्रकाशित न करनेके कारण तो नहीं हुआ है।

५ दूसरों पर विश्वास करनेकी आदत डाले।

सम्मति ।

दैनिक जीवनमें मनुष्यको नाना प्रकारके कार्य करना पडते हैं। इनमेंसे कई कार्य साधारण और कई विशेष महत्त्वके होते हैं। कईका परिणाम क्षणस्थायी और तुच्छ होता है। इसके विपरीत कई कार्योंका फल जीवन-पर्यंत तक भोगना पडता है। इन सब कार्योंको शुरू करनेके पेश्तर बुद्धिमान् मनुष्य इनके कारण, तारतम्य, और परिणामके विषयमें भली भाँति सोच-विचार कर तदनुकूल उपायोंकी आयोजना करते हैं। दूरदर्शी और मूर्खोंकी पहचान यही है कि पहला तो कार्यके परिणामोंकी ओर बड़े गौरसे देखता है, देश-कालकी परिस्थितिमें अन्तर हो जानेसे

उस कार्यके परिणाममें क्या अन्तर होगा इस बातको सोच कर यथा संभव हानिकी संभावनाओंको दूर करनेके साधनोंको जुटाता है। इसके विपरीत मूर्ख कारण और उनके परिणामोंकी बिलकुल समालोचना न करते हुए बैलकी नाई आँखें मीच वासनाओंकी तृप्तिके लिए झुक पड़ते हैं। इसी भाँति जब कि चतुर मनुष्यकी दृष्टि गीधके समान चारों ओर बड़ी तीक्ष्णतासे देखती है और समयानुकूल प्रवृत्ति करनेके लिए उसका मन और शरीर सदैव तैयार रहता है उस समय आपके अनुभव-हीन मूढ़-बुद्धि पुरुषकी दशा ठीक दिनके समय चमगीदड़की नाई हो जाती है। उसे यह नहीं सूझ पड़ता कि क्या करना चाहिए। जीवनके क्षेत्रमें तो किसीकी मुरव्वत नहीं। राजा, रंक, मूर्ख, विद्वान सभी एक-से हैं। भूलका दुष्परिणाम सभीको भोगना ही पड़ता है। निदान मूर्ख लोगोंको अपनी उतावलीके लिए रोना पड़ता है।

कारणोंकी शृंखलाको देख कर परिस्थितिके अनुसार साधन जुटा लेना निस्संदेह बड़ा ही दुस्तर कार्य है। कभी कभी बड़े बड़े विद्वान अनुभवी पुरुष भी कारण-परिणामके गोरख-धन्देमें उलझ कर भूलें कर बैठते हैं। मनुष्यका व्यवहार-क्षेत्र इतना नाजुक है कि परिस्थितिमें थोड़ासा अंतर पड़नेसे परिणाम बिलकुल उल्टा हो जाता है। इसी लिए इन विषयोंमें बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों तकका चित्त भी सदैव सशङ्कित रहता है। कार्य-क्षेत्रमें जहाँ तक हो सके विचारोंकी दूरदर्शिता बड़ी आवश्यक है। कभी कभी ऐसे जटिल प्रश्न आ उपस्थित होते हैं कि मार्ग सूझ ही नहीं पड़ता। इसी लिए लोग बहुधा कहा करते हैं कि दूसरेसे सलाह ले लेना अच्छी बात है। निस्संदेह 'एक पर एक ग्यारह'की कहावतके अनुसार दूसरे मनुष्योंकी सलाहसे कार्य-प्रणाली बहुत सरल हो जाती है और इसी लिए कौन्सिलों द्वारा राज्य-प्रणालीकी प्रथा सभी सभ्य देशोंमें प्रचलित है। वस्तुकी ओर चारों ओरसे नजर फेंक कर उसके गुण-दोषोंकी सच्ची समालोचना कर-

लेना एक व्यक्तिका काम नहीं है। परन्तु सम्मति लेने और देनेका कार्य उतना सरल नहीं है, जितना हम इसे समझते हैं। इसी लिए इस लेखमें हम इस विषय पर कुछ विचार करना चाहते हैं।

सलाह लेनेकी गरज यही है कि वस्तुके विषयमें निष्पक्ष विचार करके जो कुछ निर्धार हो वही बताया जाय। सच्चे मित्रोंका कर्तव्य भी यही है कि आगा-पीछा सोच-समझ कर जैसा कार्य ठीक समझ पड़े वैसा अपने मित्रोंको बतलावें। यदि संसारमें इस भाँति निष्कपट व्यवहारकी पद्धति जारी हो जाय तो मनुष्य-जातिका सम्मिलित बल बढ़कर दुःख-समूहका नाश होनेमें देर न लगे। परन्तु दुःखका विषय है कि यदि सैकड़े पीछे नब्बे मित्र ठकुर-सुहाती कह कर अपने कर्तव्य-पालनसे उऋण होना चाहते हैं तो सैकड़े पीछे नब्बे मनुष्य ही सलाह लेनेका बहाना करते हुए चापलूसीकी इच्छा करते हैं। यदि सच पूछा जाय तो मनुष्यको अधिकांश वही सम्मति रुचती है जिसकी ओर उसका निजी झुकाव हो। अपने कार्योंके लिए सराहना पानेके हम बहुत ही भूखे रहते हैं। कटुक और तीखी सलाहें, चाहे वे कितनी ही सत्य क्यों न हो, मनुष्यको नहीं भातीं। हाँ, यदि स्वतः अपने विचारों द्वारा ही मनुष्यको अपनी कर्तव्य-प्रणालीमें दोष दीख पड़े तो संभव है कि वह अपने दोषको स्वीकार कर ले। इसी भाँति यदि उदाहरण और दृष्टान्तोंके द्वारा हमारे मित्र अपनी बीती बातें सुना कर किसी खास विषयमें हमें शिक्षा देना चाहें तो उनकी शिक्षाको हम खुशीसे ग्रहण कर लेंगे। जिस भाँति देश-शासनमें अपरोक्ष लगान प्रजा द्वारा सदैव कड़ी दृष्टिसे देखे जाते हैं उसी भाँति व्यक्तिगत नैतिक समालोचना भी मनुष्यको बुरी लगती है। इन्कम्टेक्स उगाहनेवाले सिपाहीको देखते ही जिस भाँति लोगोंको कष्ट होता है उसी तरह अपनी भूलोंके विषयमें दूसरोंका व्याख्यान सुन कर भी लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। इसी लिए यदि तुम चाहते हो कि मित्रके ऊपर तुम्हारी

सम्मतिका योग्य असर पड़े तो तुम्हें चाहिए कि व्यक्तिगत आक्षेपोंसे बचते रहो।

दुनियांमें मनुष्यके मित्र शत्रु सभी होते हैं। यदि भलाई चाहनेवाले सच्चे मित्र पाँच हैं तो ईर्षा और द्वेष करनेवाले शत्रु पचास होंगे। शत्रु-जन हमेशा इसी प्रयत्नमें लगे रहते हैं कि किसी भाँति आपका अनिष्ट हो जाय। अत एव वे मित्रके वेषसे आकर बिना पूछे-ताछे ही सच्चे शुभचिंतककी नाईं आपको अपनी सलाह सुनावेंगे। ऐसी सलाहोंसे हमेशा सावधान रहो। इसी भाँति जब आप किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिसे राय पूछने जावें तो उसकी बताई हुई सम्मतिको अक्षरशः योग्य मत समझ लेना। लोग हमेशा अपनी सांसारिक अवस्थाके विषयमें बड़े सावधान रहते हैं, वे अपने तईं कष्टोंसे बचानेका हमेशा ध्यान रखते हैं। निदान आपको वस्तुतः सच्ची राय बता कर अपनेको कष्टमें डालनेका साहस कौन करेगा। इसी लिए ऐसे व्यक्ति हमेशा दुरंगी बातें किया करते हैं। 'गङ्गा गये तो गङ्गादास और जमना गये तो जमनादास' वाली कहावत ऐसे लोगोंके विषयमें बहुधा चरितार्थ होती है। इस लिए बुद्धिमान मनुष्यका कर्तव्य है कि 'सुने सबकी, परन्तु करे मनकी'।

> *सुनके सबकी बातको, पहिले ढूँढो हेत।*
> *फिर उत्तर मुखसे कहो, या विधि राखो चेत॥*

कई मनुष्य बहाना तो यह करते हैं कि वे आपकी राय लेनेको आये हैं; परन्तु यथार्थमें उन्हें आपसे सहायताका प्रयोजन है। इस भाँतिका कपट लोगोंको बड़ी सुगमतासे विदित हो जाता है और इन मायावियोंकी सारी कलई झट खुल जाती है। लोग सहायता तो दूर रहे ऐसे मनुष्योंको सच्ची सलाह तक नहीं बताते। निदान ये लोग ऐसे व्यवहारसे असंतुष्ट होकर अपने मित्रोंकी निन्दा करते फिरते हैं। परन्तु सच पूछो तो इनके साथ ऐसा व्यवहार होना ठीक ही है। कपटका बदला

कपटके सिवाय और क्या हो सकता है। निदान जिसकी सम्मति लेनेके लिए आप जावें उस व्यक्तिको कार्य अथवा विषयका खुलासा ब्यौरा सुनावें। अपने कार्योंकी प्रशंसा चाहनेकी इच्छासे आधी बातको प्रगट करना और आधीको खा जाना निन्दनीय है। इसी भाँति किसी विषयका पूर्ण विवरण सुने बिना ही झट अपने विचारोंको स्थिर कर लेना अथवा उन्हें प्रकाशित कर बैठना मूर्खता ही है। जिन मनुष्योंको ऐसा करनेकी आदत हो उनसे बचते रहो। या तो ये मूर्ख हैं या चापलूस। इनका संग न करना ही भला है। रोशफोकल नामके फ्रेंच विद्वान्की भी ऐसे लोगोंके विषयमें यही सम्मति है।

मान लो कि आपका एक मित्र आपके पास किसी कार्य विशेषको किस भाँति करना चाहिए, इन बातोंको जाननेके लिए आया है। आपको पूछ-ताछ और सोच-विचारके पश्चात् यह विदित हुआ कि यदि यह कार्य अमुक रीतिसे किया जाय तो आपको भी उससे लाभ पहुँचना संभव होगा। निदान अपनी सलाह देते समय आप सारी बातको खुलाशा कह दो। आपका जो इष्ट साधन हो सकेगा उसे भली भाँति बता दो। ऐसा मत सोचो कि आपका मतलब सधता देख वह व्यक्ति आपकी सलाह न मानेगा। नहीं नहीं, मनुष्यका स्वभाव प्रकृतिसे कुटिल नहीं है। यदि अपने हितके साथ साथ दूसरेकी भलाई भी हो सके तो ऐसा कार्य प्रत्येक मनुष्य बड़े आनंदसे करेगा। इसके विपरीत स्वार्थ-वश होकर यदि आप अपना मतलब उस व्यक्तिके प्रति प्रगट न करेंगे तो भविष्यमें जिस समय उसे वह मालूम हो जायगा वह आपके कपट-व्यवहारसे क्रोधित होकर आपके बताये हुए मार्गको त्याग देगा। ऐसा करनेसे देखो दोनों जनोंकी हानि ही होगी। अत एव अपने विचारोंका स्वच्छ हृदयसे प्रगट कर देना ही उत्तम व्यवहार है। अंधे और लूले मनुष्योंकी कहानीमें आप ही बताइए यदि लूले मनुष्यने अपसे अपनी इष्ट सिद्धिके

विषयमें कुछ भी न कहा होता और सिर्फ दयाके कारण ही उसको पीठ पर बैठानेकी बात प्रकाशित की होती तो क्या मामला उतनी जल्दी तय हो जाता जितना कि निष्कपट व्यवहारके कारण हो गया था।

यदि किसी विषयकी विस्तृत आलोचना करना है तो उसके विषयमें ऐसे मनुष्योंकी सम्मति ग्रहण करना चाहिए जिनके स्वभाव, परिस्थिति और विचार-पद्धति अपनेसे खूब भिन्न हों। ऐसा करनेसे वस्तुकी दूसरी बाजूका ज्ञान प्राप्त हो जायगा। हमने वस्तुका जिस अपेक्षासे विचार किया है उससे भिन्न अपेक्षा द्वारा उसकी ओर देखना भी आवश्यक है। ऐसा करनेसे पक्षपातकी संभावना नहीं रहती। निदान वस्तु-स्वरूपका मथन अच्छी तरह हो जाता है। परन्तु तुम्हें किस कार्य-प्रणालिका अवलम्बन करना योग्य होगा, यह बात जाननेके लिए बहुधा ऐसे मनुष्योंकी सम्मति ग्रहण करना चाहिए जिनका स्वभाव आपसे मिलता-जुलता हो। स्वभावोंमें समानता होनेसे एक प्रकारकी सहानुभूति पैदा होती है, जिसके द्वारा मनुष्य सहज हीमें जान लेता है कि कार्यको आप किस भाँति साध सकेंगे। निदान उसकी सम्मतिको आप कार्यमें सरलतासे परिणत कर सकते हैं। देखो, जो कार्य-प्रणाली व्यवहारमें अल्प कष्ट-साध्य और सुलभ हो वही उत्तम है। ऐसी सम्मतिसे क्या जिसका उपयोग करना असाध्य हो। हाँ, समान प्रकृतिके मनुष्योंकी सम्मतिके अनुसार चलना उस समय बड़ा लाभकारक होता है जब कार्य स्थायी और विशेष महत्त्वका हो।

जिस भाँति वैद्यकमें ऐसे उपचार, जो मनुष्यकी प्रकृतिसे अनुकूल हैं, सबसे उत्तम और सुलभ समझे जाते हैं उसी प्रकार ऐसी सम्मति, जिसका प्रयोग करनेमें अड़चन मालूम न हो, सर्वोत्तम है।

यदि कोई व्यक्ति हमारे पास किसी कार्यके विषयमें सम्मति लेनेको आवे तो उसके विषयमें अनुसंधान करनेके साथ साथ हमें उस व्यक्तिकी प्रकृति और परिस्थितिका ज्ञान भी प्राप्त कर लेना चाहिए। ऐसा किये बिना संभव

है कि हमारी सम्मति ऐसी हो कि उसका उपयोग करना उसकी शक्तिसे बाहर हो। जो उपाय बताये जावें वे नैतिक दृष्टिसे चाहे सर्वोत्तम न हों, परन्तु ऐसे अवश्य होना चाहिए जिनका अवलम्बन करना उस व्यक्ति विशेषकी शक्तिके भीतर हो और जो उसकी रुचि और स्वभावके अनुकूल हों। योग्य उपायकी आयोजना करनेके पहले उचित है कि जिस व्यक्तिको काम करना है उसकी प्रकृतिका परिचय प्राप्त किया जाय। यदि अपनी और अपने मित्रकी प्रकृतिमें विशेष अंतर हो तो उसके स्वभावके जान लेनेकी ओर भी अधिक आवश्यकता है। बहुधा मनुष्य जो बात हो चुकी है उसके विषयमें नाना प्रकारकी कल्पना करते हैं कि 'यदि ऐसा किया होता तो कितना अच्छा होता।' इस भाँति कह कह कर वे सलाह लेनेवालेको निरुत्साह कर देते हैं। यह तो उसके कार्योंकी समालोचना है न कि सम्मति। हाँ, साधारण बात-चीतके समय इस भाँतिके कटाक्ष करना अधिक अनुचित न होगा। परन्तु सम्मति लेनेके लिए आये हुए मनुष्यके कार्योंका इस भाँति प्रतिवाद करना सभ्योचित नहीं है।

सम्मतिके विषयमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह तब उपयोगी होगा जब कोई व्यक्ति किसी कार्य-विशेषको करनेकी रीतिको जाननेका इच्छुक हो और उसके और आपके मन्तव्योंमें इतना ज्यादा अंतर न हो कि वह आपकी बताई हुई रीतिका तीव्र प्रतिवाद करने लगे। यदि किसी पुरुषके मन्तव्य अपने विचारोंसे भिन्न हों तो उसके प्रति अपने विचार प्रकट करनेके पहले मनुष्यका कर्तव्य है कि जिन सिद्धान्तोंके अनुसार उसने अपने विचारोंको कायम किया है उनका विशद-रूपसे वर्णन कर दे। यदि हो सके तो प्रमाणों द्वारा अपने प्रतिपक्षीके सिद्धान्तोंका खंडन भी कर दिया जाय। परन्तु ऐसा वाद विवाद करते समय बड़ी सावधानी रखना चाहिए। 'साँप मरे न लाठी टूटे' की उक्तिको ध्यानमें रख कर अपने प्रतिपक्षीको ऐसी कुशलतासे समझाओ कि वह अप्रसन्न

भी न हो और अपने भ्रम-पूर्ण सिद्धान्तोंका परित्याग भी कर दे। कभी कभी ऐसा होता है कि हम अपने चित्तमें किसी कार्यको एक विशेष रीतिसे करनेकी ठान लेते हैं; परन्तु इसके साथ-ही-साथ हमारे चित्तमें यह डर लगा रहता है कि यदि हम अपने इष्ट बान्धवोंसे उस विषयमें राय लेंगे तो वे हमें अपनी इच्छानुकूल कार्य करनेकी अनुमति कभी न देंगे और हमारे विचारोंका तीव्र प्रतिवाद करेंगे। ऐसी दशामें उत्तम उपाय यही है कि हम उनकी सम्मति बिल्कुल न लें। ऐसा करनेसे वे हम पर रुष्ट तो अवश्य होंगे, परन्तु यह रुष्टता उतनी ज्यादा न होगी जितनी कि उनकी सम्मतिकी अवहेलना करनेसे होती। बहुत हुआ तो वे हमारे माथे पर उनकी सम्मति न लेनेका दोष ही मढ़ सकेंगे। राय पूछ कर फिर उसकी अवहेलना करनेका अपमान मनुष्यको जन्मभर नहीं भूलता। इस उपायका अवलम्बन सिर्फ उन्हीं लोगोंके विषयमें किया जाय जिनकी सम्मति लेनेके लिए हम निकट सम्बन्ध अथवा और किसी कारणसे बाध्य न हों।

जान पहचानके प्रत्येक मनुष्यसे सम्मति लेते फिरनेकी आदत खराब है। इसी भाँति अपने सब मित्रोंसे सलाह लेनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा करनेसे चित्तकी निर्बलता पाई जाती है। इस लिए सलाह लेनेके लिए अपने मित्रोंमेंसे दो चारको योग्यतानुसार चुन लेना चाहिए। इसी भाँति भिन्न भिन्न किस्मके कार्योंके विषयमें सम्मति प्राप्त करनेके लिए अलग अलग योग्यताके सलाहकारोंकी आवश्यकता है। इन मित्रोंको चुनते समय योग्यताके सिवाय नैतिक बल पर भी ध्यान रखना चाहिए। बुद्धिकी प्रखरताके साथ साथ उन्नत चरित्रवाले सलाहकारोंकी बड़ी आवश्यकता होती है। कार्य-क्षेत्रमें बहुधा बुद्धिकी उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी कि उत्साह, दृढ़-प्रतिज्ञा और कर्तव्यशीलता आदि नैतिक गुणोंकी। सहवासके कारण ये गुण एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको आसानीसे

प्राप्त हो सकते हैं। इसी लिए जिन मित्रोंमें उपर्युक्त गुणोंकी मात्रा अधिक हो उनकी सम्मतिके अनुसार कार्य करना चाहिए। इसी भाँति स्वच्छ हृदय वाले मुँहफट मित्रकी सम्मति भी बड़ी सुन्दर होती है। अपने मित्रको अपना निजी कार्य समझनेवाले पुरुष संसारमें विरले ही हैं। यथार्थमें अपने मित्रोंको सम्मति देते समय हमें यही विचार करना चाहिए मानों उस कार्यको हमें ही करना है। 'अपना और पराये' का विचार जब तक रहता है तब तक सच्ची मित्रताका अनुभव हो ही नहीं सकता। मनुष्यका कर्तव्य है कि संसार-क्षेत्रमें एकाध सच्चा मित्र अवश्य बना ले। ऐसे मित्रोंकी सम्मतिके अनुसार चलनेमें विपदकी संभावना नहीं रहती। जिस भाँति सच्चे मित्रसे सम्मति लेना प्रत्येक विचारशील मनुष्यका कर्तव्य है उसी भाँति मनुष्योंको तुम्हारी बात सुननेका अवकाश नहीं है अथवा जिनको अपने सच्चे विचार प्रगट करनेमें किसी भाँति असमंजस हो या हानिकी संभावना हो तो उन्हें अपने स्वार्थके लिए नाहक तंग करना अच्छा नहीं है। अपने विचारोंको प्रगट करनेसे यदि किसीको आन्तरिक दुःख हो तो उसको अपना रहस्य बताना मूर्खता ही है।

हृदयकी गम्भीरता।
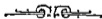
जीवनके व्यापारोंमें सफलता प्राप्त करना बडा कठिन व्यापार है। यों तो बड़े बड़े भाग्यवानोंको भी कभी कभी दुःख उठाना ही पडते हैं। हाथमें लिये हुए प्रत्येक कार्यमें उन्हें भी सदैव सफलता प्राप्त नहीं होती। परन्तु वह मनुष्य, जिसके प्रतिशत पचत्तर कार्य भी इच्छानुकूल सिद्ध हो जाते हैं, चतुर और बुद्धिमान् समझा जाता है। केवल सामाजिक मान अपमानसे ही क्या, ऐसे व्यक्तिके हृदयमें भी एक प्रकारकी शांति

सदैव निवास किया करती है । उसकी चाल मतवाली और मुख सदैव प्रफुल्लित रहता है । भाग्यको रोनेवाले अकर्मण्य आलसी पुरुष यदि ऐसे व्यक्तिको देख कर उससे शिक्षा ग्रहण करें तो उनका बड़ा कल्याण हो । परन्तु ' रक्त पिये पय ना पिये, लगी पयोधर जोंक ' की उक्तिके अनुसार प्रत्येक वस्तुमें दुष्ट मनुष्योंको दुष्टता और आलसियोंको आलस्य ही दिखाई पड़ता है । संसारके सारे व्यापारोंको मनुष्य अपनी प्रकृतिके अनुसार ही देखा करता है । कृतकार्य मनुष्योंके देखते ही लोग फिर भाग्यकी दुहाई देने लगते हैं । मानों गुणमेंसे अवगुणका ग्रहण करके अपनी भूलको पुष्ट करते हैं ।

भाग्य और कर्तव्यका प्रश्न आजकलका नहीं है। मनुष्य-जातिके साथ-ही-साथ इस प्रश्नका जन्म हुआ है । तत्त्ववेत्ताओंने इसकी खूब लम्बी-चोड़ी व्याख्या की है । इतना होने पर भी यह प्रश्न ज्योंका त्यों खड़ा हुआ है । जब तक पृथ्वी पर मनुष्य-जातिका आविर्भाव रहेगा तब तक बिलकुल संभव है कि यह प्रश्न कभी हल न हो । तर्कशास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार बालकी खाल निकालनेवाले सूक्ष्म वाद-विवाद द्वारा इस प्रश्नको हल करनेका यह उपयुक्त स्थान नहीं है । हम तो व्यावहारिक दृष्टिसे इसकी ओर देखना चाहते हैं। भाग्यकी सिद्धि करनेवाले महात्माओंका ध्यान एक-बार हम उनके उपासकोंकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। वे ही देखें कि मनुष्य-जातिको आलसी बना कर उनका उन्होंने कैसा उपकार किया है । समयकी प्रगतिको न देख कर उसके विरुद्ध उपदेश देना पाप ही है। चाहे वह उपदेश कितना भी सत्य क्यों न हो । मनुष्य-जातिकी भलाईका एक मात्र उपाय कर्तव्यशीलता है । प्रत्येक सज्जनका कर्तव्य है कि इस अमोघ तत्त्वका भरसक प्रचार करे ।

जीवनके व्यापारोंमें सफल होना मनुष्यकी शक्तिके बाहर नहीं है । इस कार्यके लिए केवल योग्य साधनोंकी ही आवश्यकता है । वास्तविक

शिक्षा और विस्तीर्ण अनुभव इन दोनोंके सहारे मनुष्य अपनी सांसारिक कामनाओंको बहुत कुछ पूरी कर सकता है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक शिक्षासे ही काम न चलेगा। सासारिक चातुर्य और हिकमतोंके विषयमें भी मनुष्योंको सिखाना होगा। बहुधा इस विषयके ज्ञानको लोग अनुभव पर ही छोड़ देते है। लोग समझते है ज्यों ज्यों मनुष्यका सांसारिक अनुभव बढ़ता जायगा त्यों त्यो इस विषयका ज्ञान उसे आप-ही-आप प्राप्त होता जायगा। इस रीतिसे जो कौशल प्राप्त होता है उसका मूल्य बहुत ज्यादा पडता है। गढेमें गिर कर थोडा बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु जीवनमें प्रवेश करनेके पहले यदि मनुष्यको ससारके मुख्य मुख्य प्रश्नोका दिग्दर्शन करा दिया जाय तो निससदेह बडा लाभ हो।

हृदयकी गम्भीरताकी जीवनमें मनुष्यको कितनी भारी जरूरत है। सामाजिक व्यवहारोंमें इस गुणके बिना लोगोंकी कितनी फजीहत होती है। ओछे मनुष्य इधरकी बात चटसे उधर कह कर दोनों ओरसे गालियोंके पात्र होते है। ऐसे मनुष्योंका विश्वास करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं पडती। ससारमें इनका कोई मित्र नहीं हो सकता। और तो क्या, लोग ऐसे मनुष्योंको पास बैठानेमें भी हिचकिचाते है। ऐसे मनुष्योंके हृदयमे ज्यों ही कोई विचार पैदा हुआ, त्यों ही इन्होंने किसी कार्यमें हाथ डाला कि चारों ओर ये अपनी बहादुरीका ढिंढोरा पीट देते है। निदान जब कार्यकी सिद्धि नही होती तब लोग इन्हे झूठी बढाईके लिए धिक्कारते है और नाना प्रकार उपहास करते है। शत्रुओंको भी इनके मन्सूबे विदित हो जानेसे अपनी कार्रवाई करनेका अच्छा मौका मिल जाता है। वे बीच हीमे कूद कर नाना प्रपचों द्वारा इनके कार्यको बिगाड डालते है। विचारोंको हृदयस्थ रखने और योग्य समय पर ही उनको प्रकाशित करनेका गुण होना सज्जनता और महत्त्वका सूचक है। इसको

प्राप्त करनेकी शिक्षा प्रत्येक नवयुवकको दी जानी चाहिए । ऐसी शिक्षाका कुछ-न-कुछ असर अवश्य होगा ।

यदि किसी बातको गुप्त रखनेका मनुष्य एक-बार भी अनुरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि उस बातको प्रकाशित कर देनेसे सैकड़ों कार्योंके बिगड़ जानेकी संभावना होगी । स्मरण रक्खो कि इस प्रकारके महत्वकी बातें बिना गाढ़ मित्रता हुए प्रकाशित नहीं की जा सकतीं । जब तक यह बात अच्छी तरह विदित न हो जाय कि बताई हुई बात भली भाँति सुरक्षित न रक्खी जायगी तब तक अपनी गुप्त बातको कौन बताता है । क्रोधके आवेशमें आकर अथवा दुःखसे द्रवीभूत होकर अपने मित्रने जो विचार प्रगट किये हैं उनका अधिकांश भाग तो स्वर्गीय और पूज्यनीय ही है । इसी भाँति दो हृदयोंके स्वर्गीय सम्मिलनमें जो गूढ़ विचार प्रगट किये जाते हैं उनको प्रकाशित कर देनेके पापका प्रायश्चित्त बड़ा भारी है । जो बात सिर्फ काया और छायाका अन्तर समझ कर ही तुम्हें बताई है उसको प्रकाशित करनेका निन्दनीय साहस तुम कैसे करोगे ?

आपसी व्यवहारमें जो बात-चीत हुई है उसको इधर उधर कहते फिरनेसे कभी कभी बड़ा बखेड़ा हो जाता है । आपसी तकरार, नालिशें यहाँ तक कि मार-पीटकी नौबत आ जाती है। यदि इतना न भी हो तो भी इस प्रकार दूतकर्म करनेवाले महात्मा पर बहुत गालियोंकी बौछार तो हुआ ही करती है । निदान ऐसा करना मूर्खता ही है । देखो, जलके बाहर निकालनेसे मछलीकी कैसी दशा होती है । ठीक उसी प्रकार पूर्ण विवरणमेंसे किसी खास बातको अलग करके उसको प्रकाशित करने पर वह भी निर्जीवकी नाईं मालूम होती है । कौन नहीं जानता कि कहे हुए शब्दोंको दुहरानेमें कुछ-न-कुछ घटा-बढ़ी अवश्य हो जाती है । शब्दोंकी घटा-बढ़ीकी बात तो जाने दो, कभी कभी मात्राओंके छूट जानेसे

अर्थका अनर्थ हो जाता है। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो अपनी जीभको वशमें न रख कर सारे व्यर्थके झगड़ेको अपने सिर पर लेगा। सामाजिक और व्यक्तिगत गुप्त रहस्योंका प्रगट करना बड़ा अपराध है।

सांसारिक व्यवहारमें व्यक्तियोंकी योग्यताके अनुसार ही उनसे बात-चीत की जाती है। एक शिक्षित सभ्य पुरुषके साथ जिन शब्दोंका उपयोग किया जाता है मूर्खों और गँवारोंके साथ उनका प्रयोग कोई नहीं करता। इसी भाँति विचारोंको प्रकाशित करनेके व्यवहारमें भी लोग व्यापारियोंकी योग्यताका बड़ा विचार रखते हैं। मान लो आप अपने किसी पहचानवाले मनुष्यसे मिले और दोनों जनोंमें कुछ देर तक साधारण बात-चीत हुई। इस बात-चीतमें ऐसा कोई प्रकरण नहीं आया जिसको गुप्त रखनेका अभिप्राय प्रकाशित किया गया हो। परन्तु ऐसी बात-चीतको भी बिना समझे-बूझे कह डालना अनुचित ही है। उस मनुष्यने आपकी योग्यताका विचार करके जो बात कही है उसको किसी मूर्ख मनुष्यके सामने प्रकाशित करना मानों अपनेको मूर्ख-श्रेणीमें शामिल करना ही है। बतलाइए ऐसा कौन मनुष्य होगा जो अपने गौरवको इस भाँति नष्ट करना स्वीकार करेगा।

महत्त्वकी बातोंको बिना विचारे प्रगट कर देना एक अवगुण है। परन्तु इससे यह न जान लेना चाहिए कि छोटी छोटी बातोंमें भी मनुष्य गूढ हो जाय। कई मनुष्योंकी आदत होती है कि आप उनसे कुछ भी पूछिए तो वे साफ जवाब कभी न देंगे—हाँ हूँ करनेके सिवाय मुँहसे वे एक शब्द भी उच्चारण न करेंगे। इस भाँति सड़ी सड़ी बातोंमें महीका-सा घूँट लेकर रह जाना हृदयकी गम्भीरताका चिह्न नहीं है। यह तो एक बुरी आदत है। जिस भाँति गुप्त रहस्यको प्रकाशित करना बुरा है उसी भाँति सर्व-साधारणको जताने योग्य बातको छिपा लेना भी तो निन्दनीय ही है। लोगोंसे छड़कते-से रहना, खुले दिलसे व्यवहार करनेमें हिचकना यह

आदत बहुतसे मनुष्योंमें तो प्रकृतिसे ही होती है। ऐसे मनुष्योंका स्वभाव कुछ लजालु-सा होता है। इसी लिए ये खुला व्यवहार करनेमें हिचकते हैं। कई मनुष्य सदैव सशङ्कित रहते हैं—उन्हें डर रहता है कि कहीं कोई उनका बिगाड़ न कर दे। इसी लिए वे अपने हृदयकी बातें नहीं बताना चाहते। इसके विरुद्ध कई व्यक्ति इसी लिए अपने विचार प्रकाशित नहीं करते कि उन्होंने ऐसा करनेसे हानि उठा ली है और कई बार लोगोंने उनकी मनोरथ-सिद्धिमें बाधा डाली है। प्रकृति, शङ्का अथवा हानिका भय इनमेंसे कोई कारण हो हृदयकी गूढ़ताको मर्यादासे अधिक ले जाना बड़ा ऐब है। जिस तरह लोग कपट-व्यवहारको चतुरता समझनेमें भूल करते हैं उसी तरह विचारोंके प्रकाशित करनेमें कूट-नीतिका अवलम्बन करनेको दूरदर्शिता समझ लेना भी भूल है।

यदि तुम्हें यह बात न सूझ पड़े कि अमुक बातको प्रकाशित करनेका उत्तम अवसर कौनसा है तो उत्तम उपाय यह होगा कि ऐसे समय मौन धारण कर लिया जाय। परन्तु मौनावलम्बन करनेवाले वेपियोंको बुद्धिमान समझ कर उनकी विशेष प्रतिष्ठा करनेकी आवश्यकता नहीं है। मौन स्वतः कोई गुण नहीं है, वह तो केवल मात्र दोषको छिपानेका उपाय ही है।

विचारोंको कब गुप्त रखना चाहिए और किस समय उनको खुले दिलसे प्रकाशित करना चाहिए इस विषयका ज्ञान नियमोंका परिशीलन करने अथवा पुस्तकोंका पाठ करनेसे प्राप्त होना असंभव है। मनुष्यको इस विषयमें दो सिद्धान्तोंका अवलम्बन करना चाहिए। पहला तो यह कि वह अपने चित्तमें किसी दूसरेका बुरा न विचारे—जहाँ तक हो दूसरोंकी भलाईका विचार किया जाय; और दूसरे यह कि अपने साथियोंके हृदयको किसी भाँति आघात न पहुँचे, इस बातकी सावधानी रक्खी जावे। इन दो सिद्धान्तोंका अनुसरण करनेसे हर एक मनुष्य जान

सकेगा कि अपने मित्रोंकी कौन कौनसी बातें गुप्त रखी जानी चाहिए और कौनसी प्रकाशित की जानी चाहिए। यदि दूसरोंके विषयमें मनुष्यके विचार अच्छे हों और किसी समय यदि वह अपने गोपनीय विचारोंको भूलसे प्रकाशित भी कर दे तो उसको हानिकी संभावना न होगी। निदान अपने सांसारिक व्यवहारोंमें समयानुकूल हृदयको खोलना और बंद रखना एक अच्छा गुण है। पत्थरकी नाई भीतरकी आभाको बिलकुल न फूटने देना अथवा काचकी नाई बिलकुल पारदर्शी होना दोनों हानिकारक है। समयोचित व्यवहार ही श्रेयस्कर है।

किसी विषयको सर्व-साधारणमें प्रकाशित करते समय अपने महत्त्वको स्थिर करनेके लिए यह बताना कि वह बात पहले पहल गुप्त रीतिसे तुम्हें ही बताई गई थी और तुम उस विषयके मंत्री थे, कुछ कम कपट नहीं है। इतना करना ही तुम्हारी शक्तिके भीतर है, इससे अधिक और क्या करोगे?

अपनी गुप्त बातें किस प्रकारके व्यक्तियोंको बतानेमें हानि न होगी इस प्रश्नका संतोष-जनक उत्तर देना कठिन है। साधारणतः ठंडी प्रकृतिके अभिमानी मनुष्योंको अपने गुप्त रहस्य बतानेमें कुछ हानि न होगी। ऐसे मनुष्य अपने विचारोंको सहसा प्रगट नहीं करते। वे व्यक्ति, जिनको ऐसे मामिलोंमें काम करना पडा है, जिनमें गोपनीय बातोंकी बाहुल्यता रही हो, बहुधा अपनी बातें प्रकाशित करनेमें बड़े सावधान रहते है। इसके विपरीत यह कहना कठिन होगा कि मूढ-बुद्धि और प्रशंसाके भूखे इन दोनों व्यक्तियोंमेंसे किसके हृदयकी बात पा लेना सरल होगा। कई चालाक मनुष्य तुम्हारे हृदयको नाना प्रकारसे टटोलेंगे जिसमें उन्हें तुम्हारी गुप्त बातका पता लग जाय। ऐसे मनुष्योंको यदि जरा भी भेद मिल जाय तो फिर वे सारी बातका अंदाज लगा लेते हैं। इन लोगोंसे किसी बातको छिपाना बड़ा कठिन है। निदान प्रशंसाके भूखे मनुष्य सहज हीमें इनके शिकार बन बैठते हैं। ज्यों ही इन्हें मानके सिंहासन

पर बैठाया कि ये उल्लू बनें । संसारमें बहुतसे व्यक्ति ऐसे भी हैं जो किसी बातको, चाहे वह कितने ही महत्त्वकी क्यों न हो, गुप्त रखनेमें समर्थ न होंगे । इसका कारण यह नहीं है कि ऐसे मनुष्य लोक-प्रशंसाके भूखे हैं अथवा मूर्ख ही हैं और न उनके चित्तमें किसी भाँतिकी ईर्षा अथवा द्वेष है । कारण यथार्थमें यह है कि इन बेचारोंको संसारके मायाचक्रका कोई अनुभव ही नहीं है । जैसे सरल प्रकृतिके वे आप हैं वैसे ही दूसरोंको समझते हैं । उन्हें इस बातकी खबर नहीं है कि दुनियामें साधु लोग इने-गिने ही हैं । यहाँ तो अधिकांश दुष्ट प्रकृतिवालोंका निवास है ।

अपने हृदयकी बातोंको प्रकाशित करते समय मनुष्यको इस बातका विचार कर लेना चाहिए कि कौन कौनसी बातें महत्त्वकी हैं जिनको गुप्त रखना आवश्यक है । अपने मित्रोंसे उन्हीं बातोंके विषयमें सावधान रहनेका अनुरोध करना चाहिए । प्रत्येक छोटी-मोटी बातके लिए दूसरोंको असमंजसमें डालना योग्य नहीं है । हृदय-रूप दरवाजेको बंद रख कर जेलके सिपाहियोंकी नाई सावधानी-पूर्वक भीतरके विचारोंकी देख-रेख रखना बड़े श्रमका कार्य है । छोटी छोटी बातोंके लिए अपने मित्रोंको नाहक इतना कष्ट उठानेके लिए बाध्य करना बुद्धिमानी नहीं है । संभव है कि इस भारसे दुखित होकर थोड़े समयके पश्चात् किसी रहस्यको वे प्रकाशित कर दें । अपने रहस्यको गुप्त रखनेका अनुरोध करनेके पश्चात् समय समय पर उसके विषयमें चेतावनी देते रहना चाहिए जिसमें मनुष्य अपने प्रणको भूल न जाय ।

कभी कभी मनुष्यको अपने गाढ़ स्नेहियोंसे भी कई बातें छिपानी पड़ती हैं । यदि मनुष्य प्रतिदिन कुछ समयके लिए अपनी चिन्ताओंसे छुटकारा पानेका प्रयत्न करना चाहता हो तो उसे आवश्यक है कि अपने विचारोंको जहाँ तक हो सके दूसरोंके प्रति प्रगट न करे । बहुधा मनुष्य देश-कालकी योग्यताका विचार न करके आनंद अथवा शांतिके समय दुःखका

स्मरण दिला कर सारे मजेको किरकिरा कर डालते है । ऐसे मनुष्योंको अपने मर्मोसे कभी परिचित न करना चाहिए । यह भी स्मरण रक्खा जावे कि जिस व्यक्तिको तुम अपने हृदयका साझीदार बनाना चाहते हो उसको तुम्हारे हिस्सेदार बननेके कारण किसी प्रकार कष्ट न उठाना पडे। कभी कभी ऐसा होता है कि तुम्हारा साथ देनेके कारण तुम्हारे मित्र पर बडी विपत्ति आ जाती है । यदि तुम्हे पहलेसे ऐसा विदित हो जावे तो अपने मित्रको सावधान कर दो । दूसरोंको कॉटोंमें घसीटना उचित नहीं है । देखो, जिस भॉति दूसरेके रहस्योंको गुप्त रखना मनुष्यका कर्तव्य है उसी भॉति अपने अतरग भावोंको प्रकाशित करते समय योग्य व्यक्तियोको चुन रखना भी हमारा धर्म है ।

संयम ।

इन्द्रियोंके दास और व्यसनी मनुष्य सयमकी बातको सोच कर भले ही नाक-भौं सिकोडें, परन्तु प्रत्येक विचारशील मनुष्य सासारिक व्यवहारोंमें सयमकी आवश्यकताको मुक्तकठसे स्वीकार करेगा । अपनी मानसिक वृत्तियोंको कावूमें रखना, अपनी बुरी आदतोका परिष्कार करना और वासनाओं पर विजय प्राप्त करना ही संयम है । संसारके प्रत्येक व्यापारमें महत्त्व और ख्याति प्राप्त करनेके लिए सयमकी भारी आवश्यकता है । किसी भी महात्मा अथवा प्रख्यात पुरुषका जीवन-चरित्र उठा कर देखनेसे यह बात बडी सरलतासे जॅच जावेगी । सारी नैतिक शिक्षाकी गरज भी यही है कि मनुष्य अपने मानसिक विचारोंको कावूमें रक्खे । सज्जन और नीच पुरुषकी सबसे उत्तम पहचान यही है कि अवसर आने पर पहला तो क्रोधके हलाहलको पी लेता है और दूसरा उसके

वशमें होकर नाना प्रकारके अनर्थ कर बैठता है । विचार करनेसे मालूम होता है कि मनुष्यमें यदि अपने विकारोंको रोकनेकी आदत होती, यदि वह आकस्मिक दुर्घटनाओंके आ जाने पर भी अपनी शांतिको स्थिर रखनेमें सक्षम होता तो संसारमें दुःखका कुटुम्ब इतना न बढ़ता । आत्मिक उन्नतिकी बात जाने दो, उसे प्राप्त करनेकी तो संयम पहली सीढ़ी है ही; पर यदि तुम्हारा चित्त सिर्फ सांसारिक ऐश्वर्यकी ओर ही है, यदि तुम खूब धन कमा कर समाजमें अपनी ख्याति बढ़ाना चाहते हो तो भी तुम्हें संयमको सीखना होगा । किसी भी चतुर व्यापारीको देखो, क्या वह रोज समयके ऊपर अपने व्यापारकी देख-भाल नहीं करता ? कसरतके उस्तादों और पहलवानोंको अपना चित्त वशमें रखनेकी सबसे भारी आवश्यकता है । निदान जो मनुष्य अपनी उन्नतिका इच्छुक है उसको अपने ऐबोंकी ओर दृष्टि डालना ही होगी । उनके निदानों और कारणोंको भली भाँति निश्चित करके उनसे छुटकारा पानेका प्रयत्न करना ही पड़ेगा । यदि अपने नैतिक बलको बढ़ाना चाहते हो तो इस विषयमें सावधानी-पूर्वक कार्य करते रहो । अपनी आत्माको सबल बनाना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है ।

मानसिक विकारोंको काबूमें रख लेनेकी शक्तिको प्राप्त करनेके लिए तथा अपनी हानिकारक आदतोंसे छुटकारा पालेनेके लिए जो क्रिया की जाती है उसीका नाम संयम है । इस प्रकारकी व्याख्याको समझ लेना सरल काम है; परन्तु सड़ीसी आदत पर भी विजय प्राप्त कर लेना कितना मुश्किल है यह बात सब मनुष्य जानते हैं । मानसिक विकार इतने प्रबल और दुर्दम होते हैं कि उनको पछाड़ देना शूरवीरों हीका काम है । तमाखू पीनेकी चाटको ही लीजिए, इस भयानक व्यसनके फंदेमें मनुष्य कैसी सरलतासे फँस जाता है । एक-बार आदत पड़ जाने पर तमाखू छोड़ देना क्या साहसका काम नहीं है ? अपनी बुरी आदतों पर विजय प्राप्त

कर लेनेके कारण संभव है कि मनुष्यके हृदयमें अभिमान पैदा हो जाय। ऐसे मनुष्य भी देखे जाते हैं जिन्हें अपने संयमका बड़ा गुमान रहता है। वे जन-साधारणको बड़ी तुच्छ दृष्टिसे देखते हैं, ऐसा न होना चाहिए। नहीं तो वही मसल होगी कि 'आप तो चले गये, परन्तु ऋण छोड़ गये।' हम पूछते हैं अभिमान क्या एक प्रकारका दुर्गुण नहीं है? यदि है तो उसके अधीन होना उचित नहीं है। यदि तुमने अपने बैरीको पराजित कर दिया है तो निश्चेष्ट होकर नाच-राग हीमें मस्त मत हो जाओ। अन्यथा कोई दूसरी आपत्ति आकर तुम्हें घेर लेगी। विजय-प्राप्तिके आनंदके साथ-ही-साथ कठिनाईका भी स्मरण रखनेसे हृदय उच्छृंखल नहीं होने पाता। शत्रुके प्रचंड बलको याद रखनेसे चित्त बे-लगाम न होगा। निदान अभिमानको भी शत्रु समझ कर हमें उसको अपने पास न फटकने देना चाहिए।

आत्म-संयमके अभिलाषी पुरुषोंको चाहिए कि वे अपने विचारों और कृत्योंको सदैव ध्यानसे देखते रहें। बुद्धिमानोंने विचारोंको कार्योंकी जननी बताया है। निस्संदेह बुरे विचारोंका परिणाम बुरा कार्य ही होगा। यह भी समझ रखना चाहिए कि जो भाव हृदयमें उत्पन्न हुआ है वह कार्यमें किसी-न-किसी दिन अवश्य परिणत होगा। यदि ऐसा न होता तो विचारोंको उन्नत बनानेके सारे प्रयत्न निष्फल ही होते। विचारों और कार्योंके घनिष्ट सम्बन्धको देख कर मनुष्यको चाहिए कि अपने चित्तमें बुरे विचारोंको उठने न दे। इस प्रकार आत्म-निरीक्षणके कार्यमें बुद्धिमानोंको सावधानीसे काम लेना चाहिए। जिस प्रकार रोगका निदान और उसके कारणोंका यथार्थ मनन करनेके पहले ही सिर्फ साधारण चिह्नों परसे ही उपचारको निश्चित कर लेना ठीक नहीं है उसी प्रकार नैतिक अवनतिके कारणोंका विशेष ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उसके दूर करनेका उपाय करनेसे लाभ न होगा। इस विषयमें मनुष्य जितनी

गहरी छान-बीन करे उतना ही उसे अधिक फल प्राप्त होगा। मानव-प्रकृतिका परिचय प्राप्त कर लेना दुस्तर कार्य है। दूसरोंकी बात जाने दो, कभी कभी मनुष्यको अपनी प्रकृतिके विषयमें जाननेके लिए भी बहुत श्रम और समय लगता है। विशेषता यह है कि मनुष्यमें जो सद्गुण विद्यमान हैं उनका अनुभव उसे सरलतासे हो जाता है। और इस कारण वह बहुधा अपने गुणोंका अभिमान करने लगता है। आत्म-प्रशंसाकी मात्रा उसके हृदयमें एक-दम बढ़ जाती है; परन्तु अपने ऐबोंको देखना इतना सरल नहीं है। इसके लिए निष्पक्ष हृदयकी आवश्यकता है। लोकमें कहावत प्रसिद्ध है कि 'दियातले अँधेरा,' यह वास्तवमें सत्य है। सच्चे मित्रोंका कर्तव्य है कि आपसमें एक दूसरेके अव-गुणोंको बता दें। जिस भाँति हो सके अपने दोषोंको अच्छी तरह देख कर निधड़क होकर उन्हें स्वीकार करो। अपने दोषोंको जान-बूझ कर छिपाना, उन्हें स्वीकार करनेमें आगा-पीछा करना यही तो नैतिक भीरुता है। मनुष्यकी उन्नतिमें यह डरपोंकपना बड़ी बाधा डालता है। यदि मनुष्य अपने हृदयके साथ ही निष्कपट व्यवहार करना सीख ले तो उसकी उन्नति होनेमें देरी न लगेगी; परन्तु ऐसा करनेके लिए नैतिक बलकी दरकार है। किसी कलामें हस्त-कौशल प्राप्त करनेके लिए जिस भाँति प्रतिदिन अभ्यास करना पड़ता है उसी प्रकार मनुष्यको अपने दोष मुक्तकंठसे स्वीकार करनेकी आदतका भी प्रतिदिन अभ्यास करना होगा।

आत्म-निरीक्षणमें यदि सफलता प्राप्त करना चाहते हो तो मानव-प्रकृतिका ज्ञान सम्पादन करना होगा। मनुष्यके दैनिक व्यवहारका तीक्ष्ण दृष्टिसे अवलोकन करनेके साथ-ही-साथ मानस शास्त्रका ज्ञान भी इस कार्यके लिए आवश्यक है। जन-साधारण बहुधा अपने कार्योंको एक दूसरेसे विच्छिन्न समझते हैं। यही कारण है कि वे कार्यों द्वारा

मनुष्यकी प्रकृतिको परखनेमें बहुधा बड़ी बड़ी भूलें किया करते हैं। परन्तु यदि सच पूछो तो मनुष्यके कार्य, चाहे वे एक दूसरेसे कितने ही भिन्न क्यों न हों, आपसमें स्वभावकी डोर द्वारा बद्ध रहते हैं। इसी सूक्ष्म डोरको देख लेना, बस यही प्रयोजनीय है। निदान अपनी प्रकृतिके दोषोंको देख हमें चाहिए कि हम किसी सिद्धान्तको कायम करें। यह स्थिर करके तदनुकूल आचरण करना और बाधाओंको सहन करते हुए अपने कर्तव्य पर अटल रहना यही आत्मोन्नतिका उपाय है। मान लीजिए कि तमाखू पीनेकी खोटी आदतसे आपको घृणा हो गई है, आपका हृदय उससे ऊब गया है और आप सदैव इस बातके लिए चिन्तित रहते हैं कि अवसर आने पर उसे त्याग दें। मान लीजिए ऐसा होते होते किसी दिन किसी महात्माके उपदेशको सुन कर आपने तमाखू पीनेका एक-दम परित्याग कर दिया—समयके ऊपर व्यसनके लालचमें न फँस जानेकी प्रतिज्ञा कर ली। फिर यदि आप शैतानके माया-जालमें आ गये तो आपकी सारी सौगंदें कपूरकी नाई उड़ जायँगी और ऐसी दशामें मानसिक बलकी उन्नतिके बदले अवनति हो जायगी। इस परीक्षाके समय मनुष्यको खूब सावधानी रखनी चाहिए। उस बुरी आदतके दोषोंकी पर्यालोचना करना, उसके भयानक परिणामोंको सोचना और हृदयसे उसकी गर्हा करना यही शत्रु पर विजय पानेके शस्त्रास्त्र हैं। धर्मशास्त्रके उपदेशोंको सुन कर उनका मनन करना और उनके अनुकूल आचरण करना यह भी आत्मोन्नतिका एक उत्तम साधन है।

आत्मोन्नतिका पथ बड़ा दुर्गम है। जरा जरासे ऐबोंका परिशोध करनेके लिए बरसों कठिन परिश्रम करना पड़ता है। विघ्न और बाधाओंकी तो बात ही न पूछिए, शैतानसे लड़ना और उस पर विजय प्राप्त करना क्या आसान बात है! कभी कभी मनुष्यके सब साधक कारण किसी विशेष आदतको छुटानेमें निष्फल हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर

हमें स्मरण रखना चाहिए धनको संग्रह करनेके उपाय दो प्रकारके हैं। या तो हम खर्चसे अधिक धन कमावें अथवा अपने खर्चको आयसे कम कर दें। इसी तरह यदि साधक कारणों द्वारा हम अपनी बुरी आदत पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते तो हमें चाहिए कि अपने नैतिक बलको बढ़ाते जावें। जब हमारा चरित भली भाँति उन्नत हो जायगा तब हम उस आदत पर सरलतासे विजय प्राप्त कर सकेंगे। सबेरे उठनेकी अच्छी आदत यदि बहुत दिन तक सबेरे जगाये जाने पर भी न पड़ सके तो रात्रिके कार्य-क्रमको बदल डालना योग्य होगा। जिस भाँति शत्रु-दल पर विजय प्राप्त करनेमें अपनी और अपने मित्रोंकी सेनाको इकट्ठी करनेसे सफलता प्राप्त होनेकी सम्भावना बढ़ जाती है उसी भाँति नैतिक संसारमें दोषोंका निराकरण करनेके लिए अपने आत्मिक बलको बढ़ानेका प्रयोजन होता है। चरित्रको उन्नत करना मानों नवीन नवीन मित्रोंको बनाना ही है। भौतिक बल बढ़ जाने पर स्वार्थकी वे लालसायें, जिन पर विजय प्राप्त करना पहले असंभव प्रतीत होता था, बिलकुल तुच्छ और बल-हीन जँचने लगेंगी। तुम्हें अपनी असाधारण उन्नति पर आश्चर्य होगा और संग्रामको जारी रखनेके लिए मानों तुम्हारे पास नवीन सामग्री एकत्रित हो जायगी। देखा गया है कि मनुष्य यदि अपने हृदयमें प्रेम और सहानुभूतिको बढ़ाता जावे तो उसकी क्षुद्रता धीरे धीरे घटती जाती है। हठ और दुराग्रहसे छुटकारा पानेका भी यह उत्तम उपाय है। सहानुभूतिका विस्तार होनेके बाद तुम्हें मालूम होगा कि पहले जरासी बातोंमें जो तुम नाक-भौं सिकोड़ा करते थे वह निस्संदेह एक बुरी टेव थी और उससे छुटकारा पा जानेके कारण अब तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। जब तक मनुष्यका मानसिक और कर्तव्य-क्षेत्र संकुचित रहता है तब तक उसकी प्रकृतिमें क्षुद्रता रही आती है। अपनी प्रकृतिसे जो विचार और कार्य भिन्न होते हैं

उनको वह सहन नहीं कर सकता। कूप-मंडूककी नाईं वह समझता है कि उसके सब विचार और कार्य निर्दोष हैं और दूसरोंके सब दोष-पूर्ण ही हैं। ऐसे स्वभावके कारण मनुष्य सामाजिक कार्योंमें योग देनेसे वंचित रहता है। मिल कर कार्य करना तो उससे बन ही नहीं पड़ता। भ्रम-पूर्ण विचारोंके कारण उसके हृदयमें सदैव अशांति रहती है। निदान अपने क्षेत्रको विस्तीर्ण करनेकी बड़ी आवश्यकता है। इसका सरल उपाय सहानुभूतिको बढ़ाना है। जो मनुष्य समाजमें अधिक हिलता-जुलता है, जो नाना प्रकृतिवाले मनुष्योंके विचारोंसे परिचित रहता है और दूसरोंके विचारोंको सुन कर उन पर मनन करता है वही मिलनसार होकर अपनी और समाजकी भलाई करनेमें सफल हो सकता है।

शरीर और मन इन दोनोंका बड़ा घनिष्ट सम्बंध है। ऊपर कह आये हैं कि विचार ही कार्योंके बीज हैं। परन्तु यह बात स्मरण रखना चाहिए कि हृदयमें विचार-तरंगोंके उठने पर यदि उनको कार्यमें परिणत होनेका अवसर न दिया जायगा तो धीरे धीरे उनकी कार्योत्पादनी शक्ति नष्ट होती जायगी और कुछ समयमें मनुष्य कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जायगा। मानस-शास्त्रका यह तत्त्व प्रत्येक व्यक्तिके मनन करने योग्य है। बहुतसे मनुष्य ऐसे देखे जाते हैं जिनका हृदय दुःखको देख कर द्रवीभूत हो जाता है। उनके हृदयमें परोपकार करनेके निमित्त नाना प्रकारके विचार ऊसर भूमिकी फसलकी नाईं हृदयके हृदय हीमें नष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि विचारोंको कार्यमें परिणत होनेका अवसर नहीं दिया गया। प्राकृतिक नियम तो यह है कि बीजको बोकर उसकी रक्षा की जाय जिसमें कि उत्तम पौधा उठे। इस नियमको भंग करनेके कारण ही मनुष्यको अपने बहुमूल्य विचारोंको बिना फल प्रदान किये ही कुम्हलाते हुए देखना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है, जो विचार उसके हृदयमें उठें उनका भली भाँति निर्णय करके बिना संकोच उनको प्रगट कर-

नेमें विलम्ब न करे। कार्यमें परिणत किये बिना विचारोंका कुछ भी मूल्य नहीं हो सकता। चर्म-चक्षुधारी मनुष्योंको विचार तो दीखते ही नहीं हैं। विचार और तदनुकूल कार्य यही सुन्दर सम्मिलन इष्ट हो सकता है। आत्मोन्नतिके साधनोंका उपयोग करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। इसमें संदेह नहीं है कि अभिप्राय कि पूर्तिको साधन न करनेवाला क्रियाकांड सचमुच हानिकारक है। परन्तु बिना बाह्य क्रियाकांडके अभिप्रायकी भी तो सिद्धि नहीं हो सकती। इस लिए बिना समझे-बूझे बाह्य आडम्बरको मूर्खता कह बैठना बड़ी बे-समझी है। चरित्र-गठनके विषयमें तो बाह्य साधनोंकी बड़ी आवश्यकता है। देखो, अपने इष्ट मित्रों द्वारा शर्मिंदा किये जाने पर मनुष्य कभी कभी बड़े बड़े कार्य कर डालता है। स्थान और समयका भी मनुष्यके हृदय पर बड़ा असर होता है। मौका आजाने पर जन्मकी कुटेव सहज हीमें छूट जाती है। बाह्य साधनों पर इतना अवलम्बित रहना निस्संदेह मनुष्यके हृदयकी दुर्बलताका सूचक है। परन्तु जन-साधारणमें सभीको महात्मा समझना भी तो भूल ही है। प्रकृतिसे ही मनुष्यको खड़े होनेके लिए आधारकी आवश्यकता है। यदि चरित्र-गठनके दुर्गम पथमें निर्बल मनुष्योंको अपनी रक्षाके लिए बाह्य क्रियाकांड-रूप शस्त्रोंकी आवश्यकता पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं है। अभिप्रायकी सिद्धि जिन उपायोंसे हो सकती है उनका अवलम्बन करना ही बुद्धिमानी है। इस लिए भक्ति-मार्गको बिना विचारे ही गालियाँ मत देने लगो। हृदयके भीतर वह बड़ा हितकारी मार्ग है। परन्तु स्मरण रहे कि इष्ट अभिप्रायको भूल क्रियाकांडको, भेड़ियाधसानकी नाई अंतिम ध्येय समझ बैठना बड़ा अनिष्टकर होगा। साधनोंको कार्य समझना कितनी भारी भूल है। अशिक्षित मनुष्य ऐसी भूल करनेके लिए तत्पर ही रहते हैं। उनको इस विषयमें सदैव सावधान बनाये रहना उचित है। कहीं वे अंतिम ध्येयको भूल कर केवल

पाषाण हीका पूजन न करने लगें। लोग समयके प्रभावसे धीरे धीरे रूढ़ियोंका मतलब समझे बिना ही उनके अंध उपासक बन बैठते हैं। रूढ़ि-बंधनमें दासकी नाईं जकड़ जाना व्यक्ति और समाज दोनोंको अनिष्ट है। विचार-स्वातंत्र्यमें बाधा पड़ जानेसे उन्नतिका प्रवाह रुक जाता है।

व्यवहार-नीतिमें और नैतिक चरित्र-गठनमें कभी कभी बड़ी भिन्नता हो जाती है। अपने शत्रु पर साम, दाम, दंड, भेदसे विजय प्राप्त करना व्यवहार-नीतिका उपदेश है। परन्तु इस भाँति छल-कपटके उपायोंकी आयोजना करना चरित्र-गठनको हानिकारक होगा। ऐसे अवसर पर आत्मोन्नतिके साधकोंको व्यवहार-नीतिकी परवा न करनी चाहिए। बहुधा विषयोंमें व्यावहारिक नियमों और नैतिक नियमोंमें समानता होती है; परन्तु दोनोंका अभिप्राय भिन्न भिन्न है। सांसारिक उन्नति और आत्मोन्नतिमें कौड़ी-मोहरका अंतर है। इसी लिए नैतिक नियमोंकी जड़ व्यावहारिक रूढ़ियोंकी अपेक्षा बहुत गहरी है। चरित्रको उन्नत बनाना ही जिनका अन्तिम ध्येय है उन्हें सांसारिक प्रभुता और मानापमानका विचार भी चित्तमें न लाना चाहिए। मानसिक विकारों और उद्वेगों पर यदि विजय प्राप्त करना है तो व्यवहार-नीतिसे बढ़कर साधनोंको अवलम्बन करना होगा। आत्मोन्नति करनेमें कभी कभी स्वयं प्रकृतिसे भी युद्ध करना पड़ेगा। बतलाइए ऐसा दुर्द्धर कार्य सांसारिक विषयोंका लोलुपी कैसे कर सकता है?

नीति और धर्मका अटूट सम्बन्ध है। प्रत्येक विचारशील मनुष्य इस बातको मुक्तकंठसे स्वीकार करेगा कि परमात्माका विचार मनुष्यके चरित्रको उन्नत बनानेका सर्वोत्तम उपाय है। अनंत गुणोंके आगार और अगाध प्रेमके समुद्र परमात्माका विचार करनेसे ऐसा कौन व्यक्ति है जिसके हृदयमें पाप-वासनायें टिक सकें। ऋषियोंका वाक्य है कि परमात्माका सच्चा ध्यान यदि मनुष्य आध घड़ी भी सच्चे दिलसे करे तो वह

अपने माया-मोहसे सर्वदाके लिए छुटकारा पा सकता है । याद रक्खो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है । परन्तु होना चाहिए सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति । मनुष्य मनके फेरको न रोक कर सिर्फ मालाको जपते हुए अपनी आत्मिक उन्नति करना चाहते हैं । वर्षों एकासन वैठ कर लाख लाख माला जपने पर भी इनका चरित्र अंश मात्र नहीं सुधरता । यदि इनमें कुछ योग्यता आ जाती है तो वह बगुला-ध्यानी बननेकी । निस्संदेह परमात्माका ध्यान करनेके बदलेमें जो ये लोक सारा दम्भ करके कपट-व्यापार किया करते हैं उस अपराधके बदले जो दंड इन्हें मिले वही थोड़ा है । आँखोंको मींच कर शब्दोंको बुड़-बुड़ाना ही यदि भक्तिका मतलब हो तो ऐसी भक्तिको दूरसे प्रणाम करना चाहिए । सच्ची भक्ति और सच्चा ध्यान तो पूर्ण आत्मा और बद्ध जीवके सम्मिलनको कहते हैं । उस परमात्माके सम्मुख अपने दोषोंकी सच्चे हृदयसे आलोचना करना, अपने अपराधोंके लिए लज्जित होना और शोक प्रकाशित करना तथा उसके असीम प्रेमका विश्वास करके सच्चा प्रायश्चित्त लेनेके लिए उत्सुक होना, बताओ इससे बढ़कर आत्मोन्नतिका और कौन उपाय होगा ?

सफल-गृहस्थ ।

दूसरा भाग ।

व्यवसायी मनुष्यकी शिक्षा ।

" शिक्षित लोगोंने व्यवसाय-नीतिके विषय पर अपने विचारोंको आज तक पुस्तक-रूपमें एकत्रित ही नहीं किया है। इस अवहेलनाके कारण सिर्फ पढितोंकी ओर ही नहीं, परन्तु शिक्षाके प्रति भी लोगोंकी श्रद्धा दिनोंदिन घट रही है। विद्वानोंको व्यवसाय-ज्ञान शून्य देख कर लोग बहुधा कहा करते है कि पुस्तक-ज्ञान और व्यावहारिक-चातुर्य ये दोनों सहचारी नहीं है। गृहस्थाश्रममें मनुष्यको व्यवहार-नीति, राज-नीति और व्यवसाय-नीति इन तीनोंका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इनमेंसे पहली अर्थात् व्यवहार-नीतिको तो पढित लोग अनादरकी दृष्टिसे देखते है। वे कहते है कि एक तो वह धर्म-नीतिकी अपेक्षा नीचे दरजे की है, दूसरे वह चित्तकी स्थिरताके लिए शत्रुके समान है। राज नीतिके विषयमें यह बात है कि जब शिक्षित लोगोंको प्रजा-शासनका अवसर मिल जाता है तो वे इस कार्यको योग्यता पूर्वक चला सकते है; परन्तु ऐसा अवसर बहुत कम लोगोंको और क्वचित् ही मिलता है। अब रहा व्यवसाय, सो इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए कोई विशेष साधन ही नहीं है। ऐसे ग्रंथ कि जिनमें इस विषयका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया हो, आज तक लिखे ही नहीं गये है। केवल छोटे-मोटे लेखोंके अतिरिक्त ओर कोई पुस्तक नहीं है। ऐसे महत्त्वके विषयमें,

अपने माया-मोहसे सर्वदाके लिए छुटकारा पा सकता है । याद रक्खो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है । परन्तु होना चाहिए सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति । मनुष्य मनके फेरको न रोक कर सिर्फ मालाको जपते हुए अपनी आत्मिक उन्नति करना चाहते हैं । वर्षों एकासन बैठ कर लाख लाख माला जपने पर भी इनका चरित्र अंश मात्र नहीं सुधरता । यदि इनमें कुछ योग्यता आ जाती है तो वह बगुला-ध्यानी बननेकी । निस्संदेह परमात्माका ध्यान करनेके बदलेमें जो ये लोक सारा दम्भ करके कपट-व्यापार किया करते हैं उस अपराधके बदले जो दंड इन्हें मिले वही थोड़ा है । आँखोंको मींच कर शब्दोंको बुड़-बुड़ाना ही यदि भक्तिका मतलब हो तो ऐसी भक्तिको दूरसे प्रणाम करना चाहिए । सच्ची भक्ति और सच्चा ध्यान तो पूर्ण आत्मा और बद्ध जीवके सम्मिलनको कहते हैं । उस परमात्माके सम्मुख अपने दोषोंकी सच्चे हृदयसे आलोचना करना, अपने अपराधोंके लिए लज्जित होना और शोक प्रकाशित करना तथा उसके असीम प्रेमका विश्वास करके सच्चा प्रायश्चित्त लेनेके लिए उत्सुक होना, बताओ इससे बढ़कर आत्मोन्नतिका और कौन उपाय होगा ?

सफल-गृहस्थ ।

दूसरा भाग ।

व्यवसायी मनुष्यकी शिक्षा ।

" शिक्षित लोगोंने व्यवसाय-नीतिके विषय पर अपने विचारोंको आज तक पुस्तक-रूपमें एकत्रित ही नहीं किया है। इस अवहेलनाके कारण सिर्फ पंडितोंकी ओर ही नहीं, परन्तु शिक्षाके प्रति भी लोगोंकी श्रद्धा दिनोंदिन घट रही है। विद्वानोंको व्यवसाय-ज्ञान-शून्य देख कर लोग बहुधा कहा करते हैं कि पुस्तक-ज्ञान और व्यावहारिक-चातुर्य ये दोनों सहचारी नहीं हैं। गृहस्थाश्रममें मनुष्यको व्यवहार-नीति, राज-नीति और व्यवसाय-नीति इन तीनोंका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इनमेंसे पहली अर्थात् व्यवहार-नीतिको तो पंडित लोग अनादरकी दृष्टिसे देखते हैं। वे कहते हैं कि एक तो वह धर्म-नीतिकी अपेक्षा नीचे दरजे की है, दूसरे यह चित्तकी स्थिरताके लिए शत्रुके समान है। राज-नीति-के विषयमें यह बात है कि जब शिक्षित लोगोंको प्रजा-शासनका अवसर मिल जाता है तो वे इस कार्यको योग्यता-पूर्वक चला सकते हैं; परन्तु ऐसा अवसर बहुत कम लोगोंको और क्वचित् ही मिलता है। अब रहा व्यवसाय, सो इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए कोई विशेष साधन ही नहीं है। ऐसे ग्रंथ कि जिनमें इस विषयका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया हो, आज तक लिखे ही नहीं गये हैं। केवल छोटे-मोटे लेखोंके अतिरिक्त ओर कोई पुस्तक नहीं है। ऐसे महत्त्वके विषयमें,

जिसका मनुष्यको अपने जीवनमें पग-पग पर काम पड़ता है, छोटे-मोटे लेखोंसे काम नहीं चल सकता। फलतः बेचारे शिक्षित लोग इस विषयसे प्रायः अनभिज्ञ रह कर जन-साधारणमें हँसीके पात्र बनते हैं। यदि इस विषय पर अन्यान्य विषयोंकी नाईं ग्रंथ निर्माण किये जायँ तो मुझे विश्वास है कि पढ़े-लिखे लोग उनको पढ़ कर थोड़ा अनुभव प्राप्त कर लेने पर ऐसे लोगोंसे, जो केवल अनुभवके सहारे ही काम चलाते हैं, अधिक योग्यता प्राप्त कर सकेंगे। जन-साधारणके क्षेत्रमें ही यदि शिक्षित लोग उन पर विजय प्राप्त कर सकें तो कितना अच्छा हो।

बेकन—
एडवान्समेंट ऑफ लर्निङ्ग।"

पेट पालन करनेके लिए प्रत्येक मनुष्यको कुछ-न-कुछ धंदा करना ही पड़ता है। चाहे कोई दूकानदारी करे अथवा नौकरी, मजदूरी करे अथवा केवल सूदखोरी; परन्तु संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसको अपना और अपने कुटुंबका भरण-पोषण करनेके लिए थोड़ा बहुत परिश्रम न करना पड़ता हो। विधाताने मनुष्यको छोड़ कर बाकी सब प्राणियोंको बुद्धि नहीं दी है। परन्तु इस त्रुटिके बदलेमें उन्हें ऐसी परिस्थितिमें पैदा किया है कि जीवन-निर्वाहके योग्य सारे सामान उन्हें वहीं प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्यमें बुद्धि और यथेष्ट कार्य करनेकी शक्ति है, इस लिए तत्त्ववेत्ता बेकनका उपर्युक्त लेख हम लोगोंके विषयमें आज इतना ही सत्य है जितना वह आजसे ४०० वर्ष पूर्व इंग्लिस्तानके लोगोंके विषयमें था। इंग्लैंडकी तात्कालिक शिक्षाके विषयमें लोगोंका उस समय जो मत था वही आज अपनी शिक्षा-प्रणालीके विषयमें हमारा भी है। हमारे शिक्षित युवा व्यवहार और व्यवसाय-नीतिसे कितने अनभिज्ञ हैं, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि हमें अपनी आर्थिक अवस्थाको सुधारना अभीष्ट है तो उपर्युक्त वाक्योंके प्रत्येक शब्द पर बड़े

ध्यानके साथ विचार करना चाहिए। इस महात्माके महमूल्य शब्दोंने अँगरेज जाति पर जो असर किया है वह हम सब लोगोंको भली भाँति विदित ही है। ब्रिटिश जातिकी उन्नतिका सच्चा और एक मात्र कारण उनकी व्यवसाय-कुशलता ही है। किसी उद्योगको, चाहे वह व्यापार, कृषि अथवा शासन सम्बधका क्यों न हो, चलानेके लिए जिन जिन गुणोंकी आवश्यकता पडती है वे यूरोपियन जातियोंमें भली भाँतिसे पाये जाते है। इसी लिए यदि किसी कारखानेको खोलना है, यदि कोई कम्पनी खडी करनी है तो मेनेजरका काम—उसके सचालन करनेका काम—चलानेके लिए बहुधा हमें दूसरोंका मुख देखना पडता है। क्यों न हो, जब व्यवसायको हम एक-बार तिलाञ्जुली ही दे चुके है, व्यवसायके विषयमें विचार करने मात्रको हमारा जी नहीं चाहता तब हमारी यह दशा उपयुक्त ही है। 'Organisation'—प्रबध, यह विषय हमारे लिए बिलकुल ही नया है। इस विषयमें लेखकके विचार मनन करने योग्य हैं।

व्यवसाय शब्दका अर्थ हमें व्यापक रूपमे लेना चाहिए। मनुष्य अपनी उदर पूर्तिके लिए जो व्यापार करता है वे एक खास हदके बाहर आने पर सभी व्यवसायमें गिने जा सकते है। ऐसे धधे जिनके द्वारा सैकडों मनुष्योंका उदर पोषण होता है, जिनमें कार्य करनेवालोंकी सख्या भी बहुत है और जहॉ विशेष कार्योंका सचालन विशेष रूपसे ही होता है, मुख्यतया वे ही व्यवसायका नाम पानेके अधिकारी है। ऐसे धधोंका उत्तम उदाहरण कपडे बुननेकी मिलें—कारखाने—है। राज्य शासनके भिन्न भिन्न विभागोंको भी हम इस दृष्टिसे व्यवसायमें शामिल कर सकते है। रेल्वे कम्पनियोंके कार्यका सचालन, बडे बडे बेंकोंका चलाना ये बडे व्यवसायके उदाहरण है। ऐसे कार्योंका प्रारम्भ करनेके लिए सैकडों मनुष्योंको सम्मिलित होकर पूँजी एकत्र करना पडती है। इनका सचालन करनेके लिए मजदूरोंसे लेकर बडी बडी योग्यतावाले इजिनियर

तथा मैनेजरोंकी जरूरत पड़ती है। इनके उद्देश्यकी पूर्ति करनेके लिए अनुभवी विद्वानोंकी सभा रहती है। सारांश यह है कि ऐसे बड़े कारोबारमें भिन्न भिन्न अवयवोंको अपना अपना काम सुन्दर रीतिसे करनेके साथ-ही-साथ सम्पूर्ण शरीरकी भलाईके लिए भी सावधान रहना पड़ता है। जिस भाँति शरीरके अंग-विशेषमें जरासी पीड़ा होने पर सारा शरीर व्यथित हो जाता है उसी भाँति बड़े बड़े कारोबारमें जरासी गफलत होनेसे सारा कार्य अव्यवस्थित हो जाता है। अपने अधीन सैकड़ों कर्मचारियोंको संतुष्ट रखते हुए उनसे यथेष्ट काम लेना, समय समय अपने कारोबारकी नीतिको स्थिर करना और उसको व्यवहारमें परिणत करना, अपने मालिकोंके मतको चतुराईसे पलट लेना और अपने सहयोगियोंसे मिल कर चलना ये सब बातें कारोबारकी सफलताके लिए बहुत ही आवश्यक हैं। इनको प्राप्त करनेके लिए यद्यपि अनुभव ही सबसे उत्तम शाला है तथापि पुस्तकों द्वारा इनका दिग्दर्शन करा देनेसे मनुष्य इनको व्यवहारमें सीखनेके अवसरोंको व्यर्थ न जाने देंगे। इसी अभिप्रायसे वे मूल सिद्धान्त, जिनका उपयोग प्रत्येक व्यवसायके संचालनमें किया जा सकता है और जिनके बिना सम्मिलित उद्योगमें सफलता होना असंभव है, नीचे बताये जाते हैं।

कारोबारके अध्यक्षको, उसके संचालकको यदि उद्योग साधारण हो तो किसी विशेष प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हाँ, वे उद्योग-विशेष, जिनमें खास विषयोंकी जानकारीकी आवश्यकता पड़ती है, बिना उस विषयका ज्ञान और अनुभव प्राप्त किये नहीं चलाये जा सकते। विशेष शिक्षाकी आवश्यकता पड़े अथवा न पड़े, व्यवसायी मनुष्यकी साधारण शिक्षामें भी कई बातोंके ऊपर विशेष ध्यान रखनेका प्रयोजन होता है। मस्तिष्क-शक्तिकी बात तो ठीक ही है, परन्तु व्यवहारमें मनुष्यको कई नैतिक गुणोंकी पद-पद पर आवश्यकता

पड़ती है। लोग इस बातकी कुछ परवा नहीं करते कि अमुक व्यक्ति कैसा तीव्र बुद्धि है; परन्तु प्रत्येक मनुष्य सबसे पहले यही पूछता है कि उस व्यक्तिका चरित्र, बर्ताव और व्यवहार कैसा है। नैतिक चरित्रको गठन करनेकी आवश्यकता व्यवहारमें बहुत ही असरती है। झगड़ालू और दुश्चरित्र मनुष्य किसी व्यवसायको नहीं चला सकता। जहाँ जहाँ वह जाता है लोग उससे असंतुष्ट रहते हैं। अत एव प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि किसी व्यवसाय संचालन करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए वह अपने नैतिक चरित्रकी ओर विशेष ध्यान दे।

दुनियाके सब उद्योगोंमें सत्य व्यवहारकी सबसे पहली आवश्यकता है। आश्चर्यका विषय है कि जिस सत्यको लोग सदैव आदरकी दृष्टिसे देखते हैं वही व्यवसायमें अनादरकी दृष्टिसे देखा जाता है। लोगोंको विश्वास-सा हो गया है कि व्यापारमें बिना झूठके काम नहीं चल सकता। इतना ही क्यों, जो जितना अधिक झूठ बोलता है और लोगोंके साथ छल-कपट करता है वह उतना ही चतुर समझा जाता है। नैतिक अधःपतनका इससे बढ़कर नमूना और क्या होगा! यह व्यक्ति-विशेषकी नीचता ही नहीं, परन्तु जाति और राष्ट्रभरकी है। सच पूछो तो ऐसा करनेसे मनुष्यकी उन्नति कभी नहीं हो सकती। असत्य व्यवहारसे लोग एक-बार धोखा भले ही खा जायँ, परन्तु बहुत ही थोड़े समयमें उसकी सारी कलई खुल जाती है। लोग बहुधा डरते हैं कि सच बोलनेसे उनकी गुजर न होगी। निस्संदेह जब तक लोगोंमें तुम्हारी साख न जमेगी तब तक तुम्हें अधिक लाभ नहीं हो सकता। परन्तु एक-बार विश्वास जमने पर देखो क्या होता है। बहुधा मनुष्य प्रारम्भमें तो बड़ी ईमानदारीसे काम लेते हैं; परन्तु अपनी जड़ जमा लेने पर वे निश्चिंत होकर सफ़ाईके हाथ फेरने लगते हैं। कुछ दिनों तक इनकी कारस्तानी छिपी रहती है; परन्तु उसका भंडाफोड़

बहुत शीघ्र ही जाता है और उनको अपनी चतुरका भारी प्रायश्चित लेना पड़ता है। सत्य व्यवहारसे केवल आर्थिक लाभ नहीं है; किन्तु धोखे-बाजोंकी धूर्तता और गुस्से देख कर जलनेवाले महात्मा सदैव दूसरोंको कष्टमें उलझानेके लिए तत्पर रहते हैं। किसी-न-किसी प्रकारके जंजालमें फँसा कर दूसरोंका द्रव्य लूटना और उन्हें दुखी देख प्रसन्न होना यही इनका कर्तव्य-कर्म है। परन्तु ऐसे ठगोंकी दाल निष्कपट व्यवहार करने-वालोंके पास नहीं गलने पाती। जब सब लोग तुमसे संतुष्ट हैं, जब तुम किसी प्रकारका असत्य व्यवहार करते ही नहीं तब बताओ तुमको झंझटमें डालनेका साहस कौन करेगा ?

सत्य व्यवहारसे—अपने कार्यों और वचनोंको अपने विचारोंके अनु-कूल बनाये रखनेसे—भारी लाभ तो यह है कि मनुष्यका हृदय सदैव शांत और प्रफुल्ल रहता है। शङ्का और डर उसके पास फटकने भी नहीं पाते। निदान चित्त निर्मल रहनेके कारण मनुष्य भली भाँति विचार कर सकता है। इसके विपरीत झूठे मनुष्य सदैव शङ्कित रहते हैं। उनके हृदयमें सदैव यही डर रहता है कि कहीं उनकी झूठका पता न चल जाय। एक-बारकी असत्य बातको तोपनेके लिए उन्हें सैकड़ों बार झूठ बोलना पड़ता है। भला सोचो तो सही ऐसे मनुष्य अपनी बुद्धिका विकाश कैसे कर सकते हैं ? बिना निराकुलताके ज्ञान प्राप्तिके लिए प्रयास करना अँधेरेमें टटोलते फिरनेके समान है। चित्तकी स्थिरता बिना कोई व्यवसाय क्यों न हो उसमें आप योग दे ही नहीं सकते। इतना ही नहीं यदि तुम्हें अपना चरित्र सुधारना इष्ट है, यदि तुम सच्चे मनुष्य बनना चाहते हो और गृहस्थीमें रह कर भी उच्च-तम पुण्य संचय करना चाहते हो तो सत्य व्यवहारकी आदत डालो। 'स्टेट्समेन' के निम्न लिखित वाक्योंसे यह विषय स्पष्ट रीतिसे समझमें

आ जायगा। लेखकका मत है कि "बुद्धिमत्ता और नैतिक उन्नति ये दोनों सहचारी हैं। बहुधा जो मनुष्य विचारशील हैं वे सदाचरणी भी होते हैं। जिस भाँति उत्तम विचार निस्संदेह उत्तम कार्योंमें परिणत होते हैं उसी भाँति उत्तम कार्योंमें लगे रहनेके कारण मनुष्यके विचार भी उन्नत हो जाते हैं।" देखो, जो मनुष्य सदाचारी है उसको भले-बुरेका विचार सदैव करना ही पड़ता है। सत्य-असत्य, भला बुरा, और पुण्य-पाप इनकी सच्ची समालोचना करनेके लिए बतलाइए मनुष्यको अपनी बुद्धिसे कितना भारी काम न लेना पडेगा ? जिस मनुष्यके हृदयमें सत्य निर्णय करनेका सच्चा उत्साह है वह नीति-शास्त्रकी पुस्तकोंका मनन अवश्य ही करेगा। मानसिक शक्तियोंसे काम लेना यही तो बुद्धिको विकसित करनेका उपाय है। इस भाँति नैतिक उन्नतिके साथ साथ मनुष्य यदि चाहे तो अपनी मानसिक शिक्षाका क्रम भी सरलतासे जारी रख सकता है। परन्तु दुराचारके साथ साथ बुद्धिका विकाश असंभव ही है। इसमें संदेह नहीं कि तीव्र बुद्धिवाले मनुष्य यदि दुराचारमें प्रवृत्त हो जायँ तो वे बडे बड़े भीषण और जटिल कांड कर डालते है; परन्तु यह तो उनकी प्राकृतिक दुष्ट बुद्धिका फल है। दुराचारी मनुष्यका हृदय सदैव शंकित रहता है, इस कारण वह अपनी उन्नतिके विषयमें कभी निश्चिंत होकर विचार ही नहीं कर सकता। यदि दुराचारके द्वारा ही मनुष्यकी बुद्धिका विकाश होता तो संसारका दुर्जन-समूह विद्वानोंके कान काटने लगता। जिस भाँति सत्य प्रेमके कारण मनुष्यकी नैतिक और मानसिक दोनों प्रकारकी उन्नति हो सकती है उसी प्रकार अन्यान्य नैतिक गुणोंके द्वारा भी हृदय और मस्तिष्क दोनोंको लाभ पहुँचता है। देखो, दया-बुद्धिके कारण मनुष्यका हृदय भी पुलकित होता है और यदि उसी समय वह गरीब और दुखी मनुष्योंकी दरिद्रताके कारणोंके विषयमें विचार करे तो उसका ज्ञान भी वृद्धिको प्राप्त होता है। सारांश यह है कि जिस भाँति ज्ञान और शक्तिका निकट संबध है उसी प्रकार सदाचार और समझदारी भी सहचारी हैं।

हारिक उपयोगकी ओर प्रारम्भमें लक्ष्य न होना चाहिए। हमारा अभिप्राय केवल आदत और मानसिक दृढ़ताका ही है। और वास्तवमें यही उपयोगी है। इस लिए नियम चाहे क्षणस्थायी भी हों तुम्हें इनको स्थिर करनेमें कभी न हिचकिचाना चाहिए। अभ्यास करते करते भूलें तो स्वतः सुधर जाती हैं। इस लिए भूलोंसे डरना मनुष्योचित नहीं है। यदि हृदयमें सत्य प्रेम और वस्तुका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा है तो तुम्हारे निर्बल सिद्धान्त विचार-रूप खादको पाकर थोड़े ही समयमें खूब दृढ़ बन जायँगे। हाँ, अपनी भूलें विदित हो जाने पर अपने विचारोंका संस्कार करनेके लिए मनुष्यको सदैव तैयार रहना चाहिए। बहुधा लोग विचारोंके हेर-फेरको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। वे समझते हैं अपने विचारोंको पलटना मानसिक दुर्बलता है। ऐसे मनुष्य यह नहीं सोचते कि संसारमें प्रगति-शून्य होकर कोई चीज बैठ नहीं सकती। देश-कालकी योग्यतानुसार नियमों, सिद्धान्तों और विचारोंमें हेर-फेर करना यही सच्ची बुद्धिमानीका लक्षण है।

कारोबारमें सफलता प्राप्त होना अधिकांश मनुष्यकी प्रकृति पर अवलम्बित है। यदि संचालक उत्साही हो तो काम अवश्य चल निकलेगा। इसके विपरीत यदि वह विघ्न-बाधाओंके कारण हताश हो जाय तो सफलता प्राप्त होना असंभव होगी। कार्यके प्रारम्भमें जो झंझटें खड़ी होती हैं उनका शमन करना कठिन है। एक-बार जब गाड़ी चल निकलती है तब फिर उसको खींचनेमें उतना श्रम नहीं होता। प्रत्येक नये व्यवसायमें अड़चनें आया ही करती हैं। ऐसे समयमें सोचना चाहिए कि वे व्यवसायी, जो सफल कार्य होकर अपने कार्यको चला रहे हैं, उन्हें कितनी बाधायें सहना पड़ती हैं। जिनके पास धन, ज्ञान और अनुभव आदि सभी मौजूद हैं उनके कार्य भी सदैव सफल नहीं होते तो एक नवसिखुए रंगरूटको यदि प्रारम्भमें सफलता न प्राप्त हो तो कोई

हताश होनेकी बात नहीं है। कार्यके संचालकमें दूसरा गुण यह होना चाहिए कि वह शान्त प्रकृतिका हो। कार्यकी अधिकता अथवा निम्नकर्मचारियोंकी भूलके कारण वह शीघ्र क्षुब्ध न हो उठे। एक कार्यको अधूरा छोड़ दूसरेकी ओर दौड़ना, दूसरेको छोड़ तीसरेको लग जाना इस भाँति उकता कर हाय हाय करते फिरना बुरा है। 'उकताने काम नसानेकी' उक्ति प्रत्येक मनुष्यको अपने हृदयमें अंकित कर लेना चाहिए। शान्त-प्रकृति और उत्साह ये दोनों गुण यथेष्ट अंशोंमें बहुत ही कम लोगोंमें पाये जाते हैं। उत्साही व्यक्ति बहुत गर्म मिजाज होते हैं तथा ठंढे मिजाजवालोंमें बहुधा उत्साह कम रहता है। यदि प्रकृतिसे ये दोनों गुण योग्य अंशोंमें मौजूद भी न हों तो अधिक चिंता नहीं; यदि मनुष्य अपने स्वभावकी समय समय पर जाँच करता रहे और अपने दोषोंको दूर करनेका भरसक प्रयत्न करता रहे तो भी काम चल सकता है।

कई मनुष्योंकी पुस्तकों पर इतनी अधिक श्रद्धा हो जाती है कि उनमें लिखे हुए शब्दोंको वे ब्रह्म-वाक्य समझते हैं। पुस्तकें चाहे कितनी ही उपयोगी क्यों न हों उनके द्वारा मनुष्यकी भलाई होनेकी भी एक हद है। इस बातको बिना विचारे जो कोई पुस्तकों पर अंध-श्रद्धा करे तो उसीकी हानि होगी। पुस्तकोंको मनन करनेसे विचार-शक्ति भले ही प्रौढ़ हो जाय, परन्तु व्यवसायकी कार्य-प्रणालीको निश्चित करनेमें पग-पग पर पुस्तकका सहारा लेना नादानी है। पुस्तकोंमें बहुधा प्रत्येक विषयके व्यापक सिद्धान्त मात्र ही दिये रहते हैं। उनका समयानुकूल उपयोग करना यह तुम्हारी बुद्धि पर ही निर्भर है। पुस्तकें बेचारी तो अंतमें निर्जीव ही हैं। तुम्हारी विशेष आवश्यकताओंका संभव है कि उनमें उल्लेख भी न मिले। अत एव व्यवसायके कार्योंमें पुस्तकोंकी अपेक्षा अपनी बुद्धि पर निर्भर रहना ही श्रेय है।

ऊपर हमने नियमोंको स्थिर करनेकी आदतका व्यवसायमें उपयोगी

लोकमें कहावत प्रसिद्ध है कि 'कामको काम सिखाता है'। इसका अर्थ यही है कि अनुभवके साथ-ही-साथ मनुष्यका तद्विषयक ज्ञान भी बढ़ता जाता है। निस्संदेह यह प्रकृतिका धर्म है; परन्तु सिर्फ प्रकृति पर छोड़नेसे ही इस कार्यमें यथेष्ट उन्नति होना संभव नहीं है। किसी उद्योगमें लगनेके पश्चात् यदि तुम चाहते हो कि उस विषयमें तुम्हारी जानकारी बढ़ जाय तो सिर्फ अनुभव पर अवलम्बित रहनेसे काम न चलेगा। बहुधा देखा जाता है कि यदि दो व्यक्ति किसी उद्योगमें नियत समय तक अनुभव प्राप्त करें और उनकी प्राथमिक योग्यता भी समान हो, तो भी नियत समयके पश्चात् उस विषयमें दोनोंकी अक्ल समान न होगी। हम लोग अपनी शिक्षाकी 'इति श्री' स्कूल और कालिजोंमें ही कर डालते हैं। इसी लिए दुनियामें प्रवृत्त होने पर हम सुस्त होकर अपना समय बिताने लगते हैं। परन्तु सच पूछो तो जो ज्ञान स्वतःकी शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है उसका मूल्य जीवनमें बहुत ही ज्यादा है। व्यवसायमें कुशलता प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको उस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेमें सदैव संलग्न रहना चाहिए। इसी लिए हम नीचे ज्ञान प्राप्त करनेके सरल उपाय बताते हैं।

उदाहरणोंको देख कर उनकी समानता परसे नियमोंको स्थिर करना यही ज्ञानको प्राप्त करनेका वैज्ञानिक ढंग है। इसी तरीके द्वारा ढूँढ़-खोज करनेसे विज्ञानकी वर्तमानमें असाधारण उन्नति हुई है। नियमोंको एक-बार स्थिर करके व्यवहारमें उनका उपयोग करना, नवीन उदाहरणोंमें उन्हें घटित करना, निदान इस प्रकार उनकी कमीको पूरा करके उन्हें सर्वोपयोगी बनाना, यही ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्तम प्रणाली है। सच पूछो तो नियम-बद्ध ज्ञानका नाम ही तो विज्ञान है। जीवनमें हर समय हम लोग अपने ज्ञान और अनुभवको इसी भाँति बढ़ाते रहते हैं। अंतर सिर्फ इतना ही है कि नियमोंको स्थिर करने अथवा उनमें हेर-फेर करनेमें कई तो चतुराईसे काम लेते हैं और समयानुकूल अपने सिद्धान्तों-

को बदल इष्ट कार्यको सिद्ध कर लेते हैं। परन्तु इसके विपरीत अधिकांश व्यक्ति या तो नियमोंको ही स्थिर नहीं कर सकते अथवा असत्य नियमोंको कायम कर भेड़िया-धसानकी नाईं देश-कालका विचार न करके उन नियमोंके दास बन बैठते हैं। नियमोंको स्थिर करनेके लिए दृष्टन्तोंको एक दूसरेसे मीलान कर उनकी समानता और भिन्नताको बारीकीसे देखना पड़ता है। इनके कारणोंको भी ढूँढ़नेकी आवश्यकता पड़ती है। देखो, व्यवसायमें ऐसे नियमोंको स्थिर करनेका प्रयोजन प्रति समय रहता है। जो मनुष्य अपने कारोबारको भली भाँति चलाना चाहता है उसे चाहिए कि उपर्युक्त रीतिसे नियमोंको स्थिर करनेकी आदत डाले। कर्तव्यके विस्तीर्ण समुद्र पर यदि जीवन-नौकाको तूफ़ानोंसे बचा कर इच्छित स्थान पर ले जाना है तो शांति-पूर्वक नियमोंको कायम करना सीख लो। यह रीति केवल व्यवसायके लिए ही उपयोगी नहीं है। कोई विषय हो, चाहे वह स्कूलोंमें पढ़ाया जाता हो अथवा जीवनमें, व्यावहारिक अनुभव हो अथवा इतिहास, विज्ञान हो अथवा अर्थशास्त्र इनमेंसे किसीका परिशीलन करते समय लेखकके विचारोंकी परीक्षा करके अपने स्वतःके सिद्धान्तोंको स्थिर करनेमें कभी न चूको। अन्यथा लेखकके दास बन कर पुस्तकाव-लोकन करना तो बुद्धिको गुलाम बनाना है।

यदि कोई शंका करे कि व्यवहार और व्यवसाय-नीतिके नियम जड़ विज्ञानके नियमोंके नाईं अटल नहीं होते। जब देश-कालकी योग्यतानुकूल नहीं नहीं, व्यक्ति व्यक्तिके अनुकूल इन्हें बदलनेकी आवश्यकता होती है तब ऐसे क्षणस्थायी नियमोंको स्थिर करनेसे लाभ ही क्या है? इस बातको हम भी मुक्तकंठसे स्वीकार करते हैं कि आचार-शास्त्रके सिद्धांत पदार्थ-विज्ञान अथवा रसायन-शास्त्रके सिद्धान्तोंकी नाईं अचूक नहीं होते; परन्तु स्मरण रहे कि यथार्थमें नियमोंकी उतनी कीमत या गरज नहीं है जितनी कि इनको स्थिर करनेकी मानसिक टेवसे है। नियमोंके व्याव-

होना बताया है। इन नियमोंके सहारे ही समयकी आवश्यकताके अनुकूल सिद्धान्त कायम किये जाते हैं और ये ही कार्यमें परिणत किये जाते हैं। यह तो हुई फुरसतकी बात; परन्तु व्यवसाय सम्बंधमें कई मौके ऐसे आ जाते हैं जब वादानुवाद अथवा दीर्घ विचार करनेके लिए समय ही नहीं मिलता। ऐसे समय कार्य-प्रणालीको तुरंत ही स्थिर करना पड़ता है। 'इसी समय अथवा फिर कभी नहीं' वाली कहावत चरितार्थ होती है। प्रत्येक व्यवसायी मनुष्यको ऐसे मौके पर बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिए। वास्तवमें यह क्षण अनुभवको परखनेकी खासी कसौटी है। *जिन मनुष्योंको बचपनसे ही काम सँभालना पड़ा है और जिनको* दुनियाके ऊँच-नीचका अच्छा अनुभव मिल गया है वे मनुष्य ऐसे अवसरों पर अच्छा काम दे सकते हैं।

व्यवसायी मनुष्यकी विशेष शिक्षाके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते। यह तो जिस उद्योग अथवा धंदेको मनुष्य करना चाहता है उसके अनुकूल होना चाहिए। इन दिनों व्यापार तकमें विज्ञान और कला दोनोंकी आवश्यकता होने लगी है। इसी लिए अब पुराने खूसट व्यापारियोंकी गुजंर नहीं है। प्रत्येक सभ्य देशमें नाना प्रकारके उद्योगोंकी शिक्षाके लिए अलग अलग स्कूल और कालिज भी हैं, जहाँ इनकी विशेष शिक्षाका खास प्रबंध है। इस स्थान पर हमारा अभिप्राय सिर्फ यही दिखानेका है कि व्यवसायी मनुष्यकी साधारण शिक्षामें कौन कौनसे विषयों पर विशेष लक्ष्य दिया जाय।

इस बातको सब लोग एक मतसे स्वीकार करेंगे कि प्रत्येक व्यवसायमें चाहे वह व्यापार हो अथवा उद्योग, तर्कना-शक्तिकी भारी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक व्यवसायीको प्रतिक्षण कारण और उनके फलोंका अनुसंधान करना पड़ता है। इस अभिप्रायकी पूर्तिके लिए रेखा-गणितकी शिक्षा बहुत उपयोगी है। व्यवहारमें रेखा-गणितकी साध्योंका कोई

विशेष उपयोग न भी पड़े; परन्तु इस विषयकी शिक्षासे तर्क-शक्तिका जो विकाश होगा वही अभीष्ट है । कारोबारके योग्य संचालनके लिए दूसरी बात यह आवश्यक है कि मनुष्यको सब विषयोंका थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिए । जीवनमें हमें प्रतिदिन वैद्य, शिल्पी और कारीगरोंसे मिलना पड़ता है और उनसे काम कराना पड़ता है । बड़े बड़े व्यवसाइयोंको तो इन लोगोंसे घनिष्ट सम्बंध रखना पड़ता है । बतलाइए यदि हम इन लोगोंके धंदेके विषयमें साधारण बातोंका भी ज्ञान न रखते हों तो ये हमारी कैसी हजामत बनावेंगे ? इस लिए मनुष्यका कर्तव्य क्षेत्र जितना भारी हो उतनी ही विस्तृत शिक्षा देनेकी आयोजना की जाय । पठन-क्रममें बुद्धिको पैनी करनेवाले विषयोंके साथ साथ ज्ञानको बढानेवाले विषयोंका समावेश भी होना चाहिए । निदान पठन-क्रम और शिक्षा-शैली ऐसी हो जिससे मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारके विचारोंसे परिचित हो जाय और बहुतसे विषयोंकी जानकारी भी प्राप्त करले । साथ ही-साथ इस बातकी कोशिश भी की जाय कि विद्यार्थी कुछ काल तक किसी गम्भीर विषयका भी अध्ययन करते रहें । इस प्रकार लगातार सोचते रहनेकी आदत डालनेके लिए दर्शन-शास्त्रका पठन बहुत लाभकारी होगा ।

स्कूल और कालिजोंके शांतिमय क्षेत्रसे निकल कर जीवन-संग्रामको प्रारम्भ करना अधिकांश युवकोंको बड़ा कष्टमय प्रतीत होता है । छात्रावस्थामें ये लोग कैसे हवाई महल बाँधा करते हैं, परन्तु जीवनमें प्रवेश करनेके बाद मालूम होता है कि यह तो दूसरा ही पंथ है । प्रारम्भिक अड़चनोंसे निराश हो कई युवक तो जन्मभरके लिए हताश हो जाते हैं । इसका कारण क्या है ? विचार करनेसे विदित होता है कि स्कूलोंकी शिक्षाका अधिकांश भाग जीवनोपयोगी नहीं है—जीवनमें कौन कौनसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है स्कूलोंमें उसका दिग्दर्शन मात्र भी नहीं कराया जाता । यदि शिक्षाके अंतिम वर्षमें ऐसी पुस्तकें

पढ़ाई जायँ जिनमें जीवन-नाटकको चित्रित किया हो तो विद्यार्थियोंको बड़ा लाभ पहुँचेगा। प्रसिद्ध विद्वान् बेकन साहबके ग्रंथ इस प्रकारकी शिक्षासे परिपूर्ण हैं। उनकी सुन्दर भाषा और गंभीर भाव एकदम चित्ताकर्षक और शिक्षा-प्रद हैं। उनका अध्ययन करनेसे मनुष्य-जातिके विषयमें अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस प्रकारके ग्रंथोंको पढ़ाना मानों जीवन-कार्यकी प्रस्तावना देना ही है।

ग्रंथ और विषय कितने ही महत्त्वशाली क्यों न हों, पठन-विधिका इन सबसे अधिक महत्त्व है। किसी ग्रंथको पढ़नेकी दो रीतियाँ हैं। या तो चित्तको निर्जीव थैलेकी नाईं पसार कर रटंत रीति द्वारा पुस्तकका विषय *मगजमें भर लिया जाय अथवा विचार कर धीरे धीरे योग्य संस्कार-पूर्वक* उस विषयको अपनाया जाय। पहली रीतिसे शिक्षा प्राप्त करनेमें कुछ भी वास्तविक लाभ नहीं होता। निर्दिष्ट विषयके बाहर मनुष्य कुछ भी विचार नहीं कर सकता। शब्दाडम्बरमें भूले रहनेके कारण उसमें भावोंका आनंद लेनेकी शक्ति तक नहीं रहती। इसके विपरीत यदि वैज्ञानिक रीतिसे अध्ययन किया जाय तो मनकी शक्तियाँ प्रौढ़ होकर बुद्धि तीव्र हो जाती हैं। दुनियाके धंदोंमें विद्या-पंडितोंकी आवश्यकता नहीं है। खटपटिया, विचारशील और चपल-बुद्धि मनुष्य ही इसमें पार पा सकता है। इस लिए पंडिताई प्राप्त करनेके लिए विशेष प्रयास न किया जाय तो कुछ हर्ज नहीं। साधारण शिक्षा ही यदि योग्य-रीतिसे दी जाय तो बस होगा। परन्तु शिक्षक लोग इस बातको भली भाँति स्मरण रक्खें कि विद्यार्थी रटंत रीतिका अवलम्बन न करने पावें। अपने भावोंको एकत्र करने तथा उनको शब्द और लेखके द्वारा यथार्थ-रीतिसे प्रकाशित करनेकी योग्यता बालकोंमें आ जानी चाहिए। पठित ग्रंथके *मर्मांशको एकत्र करना, आवश्यक साधनोंका जुटाना, उन्हें समानता* और असमानताके अनुकूल एक दूसरेसे भिन्न करना, नियमोंको स्थिर

कर उनका परीक्षा द्वारा निर्णय करना तथा अपने अनुभवको प्रकाशित करना—यही शिक्षाका मूल उद्देश्य होना चाहिए। यह कार्य निस्संदेह परिश्रम-साध्य है। गुरु और शिष्य दोनोंको इसे प्राप्त करनेमें बड़ी अड़चन उठाना पडेगी। प्रारम्भमें जो प्रयत्न किया जायगा वह तुच्छ और भद्दा होगा; परन्तु इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। किसी विषय पर अपने विचार प्रगट करनेके समय उनको सिलसिलेसे जमाने और उनका पारस्परिक संबंध देखनेके लिए प्रयत्नशील बनो। अपने विचारोंको परि-मार्जित करने और क्रम-पूर्ण पद्धतिको सीखनेके लिए सिर्फ विद्यार्थियोंको ही नहीं व्यवसायी मनुष्योंको भी निरन्तर प्रयत्न करना अनुचित न होगा। विना अभ्यासके इस विषयमें चतुराई प्राप्त होना अशक्य है। देखो, जरासे लेख लिखनेमें अनभ्यस्त मनुष्यको कितनी बार काट-कूट करना पड़ती है। अपने विचारोंको प्रकाशित करनेके लिए इन्हें शब्द ही नहीं मिलते। बहुधा इनकी विचार-शृंखला क्रम-बद्ध नहीं होती। अपने विचारोंको योग्य शब्दोंमें यथातथ्य प्रगट कर सकना—यह कार्य बडे बड़े बुद्धिमानोंसे भी नहीं बन पडता। इसको प्राप्त करनेमें जितना परिश्रम किया जाय उतना ही अच्छा होगा।

पुस्तकोंकी और व्यवसाय-सम्बंधी कागज-पत्र-चिट्ठी आदिकी लेखन-शैलीमें बड़ा अन्तर है। व्यवसायमें अपने मतलबको समझा देना यही इष्ट है। इसी लिए रोजगारके कागजातोंमें शब्दों और अलङ्कारोंकी भर-मार न होना चाहिए। सीधे-साधे शब्दोंका उपयोग करना ही उत्तम और निरापद है। लेखक लोग बार बार किसी शब्दको व्यवहार करनेसे घृणा करते हैं। परन्तु व्यवसायी मनुष्यको ऐसा न करना चाहिए। पुस्तकको बाँचनेवाले यदि लेखकके अभिप्रायको समझ न सकें तो लेखककी कोई विशेष हानि नहीं होती; परन्तु व्यवसायमें तो अक्षरका फरक हो जानेसे

कभी कभी अर्थका अनर्थ हो जाता है । इस लिए व्यवसाय-संबंधके पत्र इत्यादि कागजातोंको लिखते समय सावधान रहना चाहिए ।

लेखके अंतमें हम उन गुणोंका वर्णन किये देते हैं जिनकी व्यवसायमें सदैव आवश्यकता पड़ती है ।

(१) व्यवसायके संचालकको उचित है कि वे अपने उद्योगकी सूक्ष्म सूक्ष्म बातोंका भी भली भाँति अवलोकन करनेमें कभी न चूकें । प्रत्येक विषयके विवरणको विस्तार-पूर्वक शांतिके साथ सुननेकी आदत रखना उपयोगी है । यदि तुमने अपने सिद्धान्तोंको कायम कर रक्खा है तो दूसरोंकी बुरी सलाहसे भी तुम्हें हानि पहुँचना संभव नहीं है ।

(२) कार्यको सिलसिलेसे चलानेकी आदत सीखना आवश्यक है । आवश्यक सामग्रीके एकत्रित हो जाने पर कार्यको सहूलियतके साथ प्रारम्भ करनेसे अड़चन नहीं होती । क्रमानुसार कार्य करनेसे मनुष्य इच्छित कार्योंको सरलता-पूर्वक निपटा सकता है ।

(३) व्यावहारिक कार्योंमें साहस रखना यह बड़ा भारी गुण है । जरा जरासी बातोंमें घबरा उठना वाहियात है । सेनापतिको युद्धके समय जैसी युक्ति और साहससे काम लेना पड़ता है ठीक उसी तरह कार्यके संचालकको भी अपना काम चलाना पड़ता है । हानिके भूतको हृदयमें स्थान देना व्यापारियोंके लिए बड़ा हानिकारक है ।

(४) साहसके साथ धैर्य रखना यह व्यवसायीका कर्तव्य है । अड़चनोंको शांति-पूर्वक दूर करना और हानि तथा लाभमें अधीर न होना बड़ा लाभदायक है ।

(५) परिमार्जित कल्पना-शक्ति, जिसके द्वारा भविष्यके हानि-लाभका अंदाज किया जा सकता है और कार्यके उपयुक्त साधन जुटाये जा सकते हैं, यदि व्यवसायके अध्यक्षमें हो तो ' सोनेमें सुगंध ' की कहावत चरितार्थ होगी ।

यदि उपर्युक्त गुण मनुष्यमें विद्यमान हों तो वह अपने इष्ट कार्योंकी सिद्धिका उपाय करते समय पहलेसे ही अपने चित्तमें उस कार्यका मसौदा बना सकेगा। जितना लाभ होता जाय उसको धीरता-पूर्वक ग्रहण करता हुआ शेपके लिए आवश्यक साधन जुटा सकेगा। इन गुणोंकी सहायतासे मनुष्य साधारणतः हानिकी संभावनाओंको भी कम कर सकेगा।

इन सब गुणोंके अतिरिक्त सांसारिक व्यवसायोंको सम्यक् प्रकार चलानेके लिए मनुष्यको अपने कर्तव्यकी जिम्मेदारीका खूब ध्यान होना चाहिए। आत्म-विश्वासकी मात्रा होना भी नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक कार्यमें सत्य-प्रेमको झलकाना यह उसका मंत्र होना चाहिए। सत्य-प्रेम, सत्यावलम्बन और कर्तव्य-ज्ञान ये तीनों गुण मनुष्यको उद्योगी, दूरदर्शी और विचारशील बना सकेंगे। इन गुणोंके बिना व्यवसायमें सफलता पानेकी आशा करना व्यर्थ है।

व्यवसाय-संचालन।

पिछले पाठमें व्यवसायोपयोगी शिक्षाका वर्णन किया गया है। ऐसी शिक्षाको प्राप्त कर लेना मानों रोजगारके लिए पूँजी एकत्र कर लेनेके समान है। परन्तु जिस भाँति पूँजी प्राप्त कर लेने पर भी रोजगारको सफलता-पूर्वक चलानेका कार्य सब लोगोंसे नहीं बन पड़ता है उसी भाँति व्यवसाय-योग्य शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी व्यवसायके भिन्न भिन्न कार्योंको संचालन करनेके लिए अलग अलग युक्तियोंसे काम लेना पड़ता है। व्यवसाय निस्संदेह समुदाय-वाचक शब्द है।

इसमें कई कार्योंका समावेश रहता है उनको भली भाँति विभक्त कर सिलसिलेसे हर-एकका वर्णन हम अगले पाठोंमें करेंगे। इस पाठमें व्यवसायके भिन्न भिन्न अंगोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

ऊपर कहा गया है कि सम्मिलित उद्योग ही व्यवसायके नामसे पुकारे जाते हैं। कई व्यक्तियों द्वारा एकत्र की हुई पूँजी और कई मनुष्योंके परिश्रम द्वारा ऐसे कार्य चलाये जाते हैं। अत एव व्यवसायके अध्यक्षको सदैव दो प्रकारके कार्य करना पड़ते हैं।

(१) व्यवसायके संबन्धमें अन्य लोगोंसे व्यवहार;

(२) रोजगार सम्बन्धी कार्योंको मुख्य भागका स्वतः द्वारा संचालन;

इन दो प्रकारके कर्तव्योंको करनेकी व्यवसायमें प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। नीचे बताया जाता है कि अन्य व्यक्तियोंसे व्यवसाय-संबन्धमें किस किस भाँति बर्ताव करना होगा।

व्यवसायके संचालकको बहुधा तीन प्रकारके मनुष्योंसे काम पड़ता है। पहले अपने अधीन कर्मचारियोंसे, दूसरे सहयोगियोंसे और तीसरे कारखाने अथवा व्यवसायके मालिकोंसे। व्यवसायके भिन्न भिन्न कार्योंका योग्य रीतिसे संपादन किया जाता है अथवा नहीं इसका निरीक्षण करनेमें अपने अधीन कर्मचारियोंसे मिलना-जुलना पड़ता है। कार्यको चलानेकी रीति और साधनोंके विषयमें इनको निर्देश करना पड़ता है। जिस भाँति भिन्न भिन्न जातियोंमें कई विशेष खासियतें पाई जाती हैं और जिस प्रकार उनकी कई आवश्यकतायें भी विशेष होती हैं उसी प्रकार प्रत्येक व्यवसायकी आमद-रफ्त और पैदावारके विषयमें कई विशेषतायें रहती हैं। इनका मनन करने और इनको पूरी करनेका विषय इस व्यवसायको करनेवाले अन्यान्य लोगोंसे परामर्श करके निर्धारित किया जाता है। व्यवसायके वार्षिक आय-व्ययका चिट्ठा, उसको चलानेका मार्ग इत्यादि विशेष विशेष बातें तय करनेके लिए मालिकोंकी स्वीकारता लेना

पडती है। निदान इन तीन प्रकारके व्यक्तियोंसे सम्बध रखनेसे सचालकको इस भाँति कार्य करना पडेंगे।

(१) कर्मचारियोंकी नियुक्ति और उनके कार्यकी देख-रेख,

(२) साक्षात् भेंट और मुलाकात द्वारा विषयोंको तय करना,

(३) सहकारियोंको मनोनीत करना,

(४) सम्मति ग्रहण करनेके लिए कमेटियोंका उपयोग।

इन सब बातोंका विशेष विवरण करनेके पहले उन साधारण गुणोंका परिचय कराना आवश्यक है जिनका उपयोग व्यवहारमें प्रतिदिन होना चाहिए।

बहुधा मनुष्य व्यवहारमें हदसे ज्यादा चचलता दिखाना पसद करते है। इन लोगोंका विश्वास है कि व्यवसायमें चचलता तो एक बडा गुण है। ऐसे लोगोंको करवट बदलनेमें जरा भी सकोच नहीं होता। अगर अभी आप इनकी राय लेंगे तो इनकी मशा कुछ और होगी तथा घटेभर बाद बिलकुल ही उलटी। मनमे कुछ, कहना कुछ और कार्य करना भिन्न ही, यही इनकी लीला है। निदान ऐसे लोगोंका इस आदतके कारण व्यवसायी समाजमे कोई भरोसा नहीं करता। मान लिया कि व्यवहारमें सावधानी रखना योग्य है, परन्तु इसकी भी तो हद रखनी होगी। अपने तई हानिसे बचानेके लिए, लुच्चे लफगोंके जालसे बचनेके लिए इसका उपयोग भले ही किया जाय, परन्तु भले मानसोंके साथ छल छद करना कैसे ठीक कहा जा सकता है। जो तुम्हारी बातका विश्वास करनेके लिए तैयार है अथवा जिसने तुम्हारी जबानमें बँध कर हजारोंका सौदा कर लिया है उसके साथ दगाबाजी करना तुम्हें कैसे शोभा देगा ?

दूसरोंके साथ लेन-देन व्यवहारमें कभी कभी अपनी टेकका परित्याग कर देना बडा लाभकारी है। यदि ऐसा न किया जाय तो लोग तुम्हें कुटेकी कहेंगे। इसके सिवाय दूसरोंकी इच्छानुकूल कभी कभी थोड़ी बहुत रियायत कर देनेसे व्यापारी बडे प्रसन्न हो जाते है। इतना होने पर भी

यह बात भली भाँति स्मरण रखना चाहिए कि रियायतका कर देना, हिसाब-किताबमें छूट वगैरह देना अथवा पहले भावको दुगना बता कर पीछेसे ग्राहककी इच्छानुकूल रखना; ये सब बातें नैतिक दृष्टिसे अपराध हैं। केवल इतना ही नहीं, व्यवहारमें बार बार ऐसा करना अपनी सत्यताके विषयमें संदेह उत्पन्न कराना है। पहले छः रुपया कह कर पीछेसे यदि चीज पाँच हीमें देदी जाय और ऐसा करनेमें तुमने सचमुच टोटा ही क्यों न खाया हो, तुम्हें लबार कहनेमें कौन हिचकेगा। इस लिए पहलेसे सोच-विचार कर ऐसी बात कहो जिसमें उसको पलटनेका अवसर न आवे। ऊंच जानेकी आदतको क्वचित् ही व्यवहारमें लाना चाहिए। हाँ, बड़े बड़े सौदोंमें बहुत कुछ वाद-विवादके अनन्तर कभी कभी ग्राहकोंकी संतुष्टिके लिए ऐसा किया जाय तो विशेष हानि न होगी।

जब किसी विषयको तय करते समय दोनों पक्षोंमें विवाद हो पड़े और वादी तथा प्रतिवादीकी शर्तें ऐसी हों जो कि विना नरम बनाये स्वीकार न की जा सकें तो उस समय दोनों पक्षवालोंको उचित है कि अपना अपना हठ छोड़ आपसमें अपने अपने हक्कोंको कुछ अंशोंमें छोड़ते हुए मध्यमें आकर झगड़ेको निपटा लें। बड़े बड़े अदालती झगड़े, जिनमें दोनों पक्ष-वालोंका दिवाला निकल जाता है, बहुधा हठके कारण ही छिड़ जाते हैं। जो चीज केवल नखके द्वारा टूट सकती है उसके लिए कुल्हाड़ीका उपयोग करना कैसी मूर्खता है। आपसी समझौते द्वारा कार्य करनेसे व्यापारमें बड़ी सहूलियत होगी। साहूकार और कर्जदार दोनों यदि लेन-देनके विषयमें इस उपायका अवलम्बन करें तो समय और द्रव्यकी कितनी बचत हो? बड़े बड़े व्यवसायमें सौदोंके बनानेकी यही उत्तम युक्ति है। हठके कारण व्यापारमें जितनी अड़चन उठानी पड़े उतनी ही कम है। निदान निपटारा करते समय एक बातको अवश्य स्मरण रक्खो। वह यह है कि अपनी शर्तोंको खुले दिलसे कह डालना ही अच्छा है।

ऐसे समय थोड़ा भी संकोच करके जीभ दबा कर बात कहना मानों सब गुड़ मिट्टी करना है। "आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्" इस उक्तिको हृदयमें धारण कर अपने चित्तकी बात साफ साफ समझा दो। जब तुमने अपनी इच्छाको भली भाँति प्रकाशित ही नहीं किया तब उसकी पूर्ति कैसे होगी। इच्छा सफल न होनेसे तुम पीछेसे अवश्य कुड़मुड़ाओगे। दूसरे पक्षको असंतोष इस लिए होगा कि पीछेसे तुम दहींमें मसूर डालते हो। अत एव थोड़ी-सी सावधानीके कारण यदि यह सब झंझट दूर हो सके तो थोड़े मुँह-फट ही बनलो। बातचीतकी सफाईके कारण व्यवहारमें जो लाभ होता है उसे प्रत्येक अनुभवी मनुष्य जानता है।

कार्य चाहे कितना भी आवश्यक क्यों न हो, तुम्हें विचार करनेके लिए कितना ही कम समय क्यों न मिले किसी कार्यमें कभी उतावली मत करो। बुद्धिमानोंका कहना है कि किसी कार्यको करनेके पहले मनुष्य यदि दस तक गिनती पढ़ लिया करे तो उसे कभी आपत्तिका शिकार न बनना पड़ेगा। विशेष कर ऐसे ऐसे कार्य, जिनका फल चिरस्थायी है अथवा जिनका जीवनमें अधिक महत्त्व है और जिनमें स्वार्थान्धताकी लहर उमड़ उठती हो, बड़े धैर्य और विचारके साथ किये जायँ। देरी करनेका उपदेश देनेका अभिप्राय यह है कि किसी कार्यको प्रारम्भ करते समय यदि मनुष्य उसकी सब तरफसे जाँच करले तो धोखा खानेकी गुंजायश न रहेगी। तुम कितने ही दूरदर्शी और बुद्धिमान् क्यों न हो एक नजरमें वस्तुके चारों ओर देख लेना असंभव ही है। अत एव इस गरजसे कहीं अपनी जरासी चूकके कारण तुम्हें जन्म भर न पछताना पड़े घूम-फिर कर बार बार विचार करो। देखो, दमडीकी हंडिया लेते समय उसको कितनी बार ठोक्ना पड़ता है। तब फिर व्यवसाय सरीखे महत्त्व-पूर्ण व्यापारमें उतावल करना तो निरी मूर्खता ही है। हाँ, किसी कार्यके करनेमें आवश्यकतासे अधिक देरी न लगाई जावे। यदि

उतावली करना लटकपन है तो देरी करना भी आलस्य है। परन्तु स्मरण रखो कि जो काम जितना महत्व-पूर्ण है उसका भली भाँति विचार करनेके लिए उतना ही अधिक समय लगेगा।

किसी विषयका विचार करते समय अथवा कोई कार्य करते समय प्रारम्भमें लोग खूब परिश्रम करते हैं। अपने उद्देश्यकी सिद्धके लिए जी-तोड़ मेहनत करनेमें भी वे नहीं हिचकते। साधन सर्वाङ्ग-सुन्दर हो यही उनका ध्यान रहता है। परन्तु कुछ कालके पश्चात् रक्त अथवा भावोंकी तेजी कम हो जाने पर परिश्रमसे क्लान्त हो जो साधन सरलतासे प्राप्त हो सकते हैं उन्हींका अवलम्ब करके वे संतुष्ट हो जाते हैं। जिस भाँति इनाम पानेकी इच्छासे जब बहुतसे बालक दौड़ते हैं तब उनमेंसे बहुतसे प्रारम्भमें जी छोड़ दौड़ लगाते हैं; परन्तु अंतमें हाँपते हाँपते पीछे रह जाते हैं। पर सच पूछो तो अंतिम परीक्षाका समय तो वही है—सारी दौड़-धूपका फल तो उसी क्षण पर अवलम्बित है। परिश्रम, सहिष्णुता और अध्यवसायकी सच्ची कसौटी यही है। पहले तो व्यर्थकी डींगें मारते फिरना और मौके पर मियाँ-मिट्ठू बन जाना योग्य संचालकके लिए लज्जाकी बात है। ऐसे मनुष्य जिनके सिर पर कार्यकी सारी जवाब-देहीका बोझा है और जो अपने अधीन कर्मचारियोंके कर्तव्य-पालनके जवाबदार हैं वे यदि ऐसी हिम्मत हार बैठें तो बताओ काम कैसे चलेगा! निदान कारोबारके अध्यक्षका कर्तव्य है कि अपने सिद्धान्तों पर अटल हो शांति-पूर्वक गमन करता चला जाय। विघ्न और बाधाओंसे शूरता-पूर्वक लड़ना यह व्यवसायी मनुष्यका उत्तम भूषण है।

ग्राहकों, अधीन कर्मचारियों अथवा सहयोगियोंसे बर्ताव करते समय यह बात स्मरण रखना चाहिए कि बुद्धिमानकी अपेक्षा मूर्खको समझा-बुझा कर काबूमें लाना अधिक कष्टकर है। सब लोग जानते हैं कि मूर्खोंको पलटानेमें—उनको उनकी भूल स्वीकृत करानेमें कभी कभी

तो बड़े बड़े चतुर व्यक्ति भी हार मान बैठ रहते हैं। एक-बार जो विचार उसके हृदयमें प्रवेश हुए कि मूर्ख मनुष्य उनका दास बन जाता है। स्मरण रक्खो कि व्यवसाय-सम्बंधमें तुम्हें बहुधा सैकडे पीछे नब्बे मनुष्य ऐसे ही मिलेंगे। इनसे हमेशा सावधान रहो। जब कभी तुम्हारी इनसे मुठ-भेड़ हो जाय तो अपनी सब कुशलताको एकत्र करके इनका सामना करो। इन लोगोंकी एक विशेषता यह है कि जो बात इन्हें जँच जाय उसके तो ये गुलाम हो जाते है। अत एव इनके चित्तमें सत्य विचारों-को बोनेका सदैव प्रयत्न करते रहो। जिस अंध-श्रद्धाको आज तम औगुणके नामसे पुकारते हो वही कौशल-पूर्वक व्यवहार करनेसे गुणमें परिणत हो जायगी। प्रत्येक व्यवसायी मनुष्यका कर्तव्य है कि मूर्ख महात्माओंको हाथमें लेनेकी युक्तियाँ सीख ले।

व्यवसायके संबन्धमें अपने निजी सिद्धान्तोंको स्थिर करने और अपनी बुद्धि पर अवलम्बन रखनेकी जितनी आवश्यकता है उतना ही दूसरोंके मतको परामर्श द्वारा संग्रह करना भी लाभकारी होगा। समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंके विचारोंसे परिचित होते रहना अपने मानसिक क्षेत्रको सकुचित होनेसे बचाना ही है। आजकल स्वावलम्बन और दृढ प्रतिज्ञताके साथ साथ दूसरोंके प्रति आदर-बुद्धिका होना बहुत कम पाया जाता है। परन्तु यथार्थमें इन विरोधी गुणोंका मेल ही व्यवसायमें सफलता प्राप्त करनेकी कुंजी है। सभव है कि समयोचित कार्य करनेमें किसी समय अपनी बुद्धि न चले, इतना तो सभी लोग स्वीकार करेंगे कि अपने दोष आपको दिखाई नहीं देते। समय समय पर योग्य सलाह प्राप्त करना तथा अपने दोषोंको जाननेके लिए निष्कपट लोगोंके पास बैठना, उनकी राय लेना बहुत अच्छा है। यदि तुम्हारे सिद्धान्त दृढ है, यदि तुममें विचार-शक्ति मौजूद है तो दूसरोंकी बुरी सम्मति भी तुम्हें रंच मात्र हानि न पहुँचा सकेगी। गभीर हृदय मनुष्य सबकी सम्मतिको धैर्य पूर्वक सुननेमें तत्पर रहते है।

उपर्युक्त बातोंको ध्यान देकर चित्तमें रखने और तदनुसार कार्य कर व्यवसायके पहले मुख्य अंग अर्थात् दूसरोंसे व्यवहार करनेमें बहुधा सफलता प्राप्त होती है । व्यवसायके कार्य-भागको निपटानेके लिए सबसे पहली आवश्यकता साधनोंको एकत्र कर उनको सिलसिलेवार रख छोड़नेकी है । जिस बातको तुमने हाथमें लिया हो उसका पूर्व विवरण जाननेका भी प्रयत्न करो; क्योंकि वर्तमान भूतकालकी सन्तान है। साधनोंको एकत्र करते समय किसी खास सिद्धांतके दास बन बैठना योग्य नहीं । ऐसा करनेसे हृदयमें पक्षपातका प्रवेश हो जाता है । साधनोंको एकत्र करने और उनकी छान-बीन करनेका कार्य बड़ा महत्त्व-पूर्ण है । इसको किसी दूसरे व्यक्ति पर छोड़ देना अनुचित होगा, कारण कि इसमें थोड़ी उपेक्षा करनेसे ही अधिक हानिकी संभावना है । देखो, अपने पुरुषार्थ द्वारा यदि कार्य किया जाय तो हानिकी संभावना कम होनेके साथ साथ मनुष्यमें स्वावलम्बनकी मात्रा बढ़ जाती है, विषय पर अधिकार प्राप्त हो जाता है और आकस्मिक घटनाओंका उतना भय नहीं रहता । परन्तु कई विषय ऐसे हैं जो बहु सम्मति और विवादसे ही तय होंगे । ऐसे विषयमें मगजपच्ची मत करो ।

आवश्यक साधनोंके जुट जाने परभी विषयका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करनेके लिए इन पर मनन करनेकी आवश्यकता होगी । सब सामग्रीको छान-बीन कर उसका रस निकाल निस्सार भागको फैंक देना यह कार्य कठिन और परिश्रम-साध्य है । इसको सफल करनेमें सिलसिला और प्रणाली इन दोनों मित्रोंसे काम लेना चाहिए । परिश्रम व्यर्थ न जाय इस पर सदैव ध्यान रक्खो । देखो, कार्य-समूह अनन्त और जीवनके क्षण गिने-गिनाये ही हैं । सिलसिलेमें वे सब बातें शामिल हैं जिनका उपयोग करनेसे कार्य स्वल्प परिश्रमसे थोड़े समयमें सिद्ध हो जाता है । सदा एक ही विषयकी ओर दृष्टि रखना, नशैल मनुष्यकी भाँति बार बार उसी-

के पीछे पड़ा रहना उन्नतिका बाधक है। इस लिए प्रतिदिनकी उन्नतिके विषयमें सदैव सावधान रहो। दूसरी बात जिसके विषयमें सचेत होनेकी आवश्यकता है वह यह है कि विषयका विचार करते समय विचार असम्बद्ध न हो जाय, इस लिए 'हमने कितना रास्ता तय कर लिया, वर्तमान समय हम किस ठिकाने पर है तथा आगे क्या करना होगा'—इन प्रश्नोंके उत्तरको कागज पर लिखनेका प्रयत्न करो। कलमके उपयोगसे प्रयत्नमें प्रामाणिकता आ जाती है। विचार-शक्तिका परिमार्जन करने और विचारोंका निचोड़ निकालनेके लिए लेखन-क्रियाके समान और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कागज और कलमका उपयोग हृदयकी थकावटको भी दूर कर देता है। विचारोंको शृंखला-बद्ध बनानेके लिए प्रत्येक कार्यमें उद्देश्यको कायम करना अच्छा है। जिस भाँति प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनका लक्ष्य स्थिर कर लेना आवश्यक है उसी भाँति प्रत्येक कार्यका उद्देश्य स्थिर करना भी उसका कर्तव्य है। विचार-शृंखलाके विचलित हो जानेके करण केवल कार्यकी सफलतामें ही बाधा नहीं पहुँचती; परन्तु श्रम और थकावट भी बहुत होती है। अत एव उपयुक्त युक्तियोंका अवलम्बन करना प्रत्येक व्यवसाय सचालकका कर्तव्य है।

विचारोंको स्थिर करनेका कार्य जितना कठिन है उतना ही विचारोंको शब्दों द्वारा प्रकाशित कर देना भी कठिन जानो। जैसे भाव तुम्हारे हृदयमें है ठीक वैसे ही भाव सुननेवालोंके हृदयमें भी उपन्न हो जायँ, सोचो तो सही यह कितना गुरुतर कार्य है। कभी कभी बडे बड़े विद्वान् भी इसमें सफल नहीं होते, अत एव इस विषयमें यथाशक्ति सावधानी रख सिर्फ वही बातें कहो जिनका विषयसे संबंध हो और शब्द भी स्पष्ट, सरल और एकार्थ वाची हों।

किस्से अथवा उपन्यासके रूपमें नाहक शब्दाडम्बर करनेसे कुछ लाभ न होगा। अपनी बात-चीतको आरम्भ करनेके पहले सुननेवालेकी

चित्त-वृत्तिको परख लेनेसे बड़ा लाभ होता है। कभी ऐसा होता है कि मनुष्य तो रंजमें उदास बैठा है और तुम उसके सामने हँस-हँस कर बातें करते हो। ऐसे अवसर पर बताओ तुम सफल-मनोरथ कैसे हो सकते हो? मानव-व्यवहार इतना सूक्ष्म यंत्र है कि हवाका सूक्ष्म धक्का भी उसके पलड़ोंको बिलकुल उलटा देता है। मनुष्यको अपनी चतुराई और अनुभवका कितना ही गुमान क्यों न हो, यदि इस विषयमें वह थोड़ी भी असावधानी करेगा तो उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा।

यदि कोई पूछे कि अपनी रायको अपने सहयोगियों, निम्न कर्म-चारियों अथवा मालिकोंके सामने प्रकाशित करते समय संचालकको अपने प्रमाण अथवा कारणोंको प्रकाशित करना चाहिए अथवा नहीं, तो इसका उत्तर हम यह देते हैं कि मौकेको देख कर जैसा योग्य समझो वैसा ही करो। विषय गूढ़ अथवा महत्त्वशाली है या नहीं, जिन मनुष्यों-को तुम अपने कारण सविस्तर सुनाना चाहते हो उनकी प्रकृति कैसी है तथा तुममें अपने सूक्ष्म विचारोंको भली भाँति प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य है अथवा नहीं—इन बातोंका विचार कर लो। परन्तु एक-बार सविस्तर विवरण देना प्रारम्भ कर फिर तो जैसे तैसे उसे पूरा ही करके छोड़ना चाहिए। याद रक्खो कि जो कारण तुम बताओगे लोग उन्हींको तुम्हारे कार्यकी मूल जड़ समझ बैठेंगे। इसके अतिरिक्त यदि और कोई प्रमाण कालान्तरमें दिये जावेंगे तो उन्हें माननेके लिए कोई सम्मत न होगा। इसी भाँति यदि किसी व्यक्ति-विशेषके विरुद्ध फैसला देनेकी आवश्यकता पड़े तो अपनी रायको ऐसे शब्दोंमें प्रगट करो जिससे कि उस मनुष्यको व्यर्थ संताप न हो जाय। अपनी सत्यताको प्रमाणित करते समय जोशमें आकर अनाप शनाप बकना उद्धतता है। ऐसा करनेसे लोग तुम्हारे प्रति ईर्षा करने लगेंगे। स्पष्ट कहना, परन्तु नरम शब्दोंमें अपनी बातको कह डालना यह गुण विरले मनुष्यों हीमें होता है। व्यवसाय

संचालकमें यदि यह गुण हो तो कार्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेके साथ ही लोगोंमें उसकी प्रतिष्ठा भी खूब होगी।

कमेटी अथवा कान्फरेंसमें जिस विषयका प्रतिपादन तुम्हें करना हो उसका पहले ऐतिहासिक दिग्दर्शन कराओ। वस्तुकी पूर्वमें क्या अवस्था थी, वर्तमानमें क्या है और भविष्यमें उसकी कौनसी अवस्था इष्ट है यह भली भाँति बताओ। निदान इष्ट अवस्थाकी प्राप्तिके लिए जो जो साधन तुमने निश्चित किये हों उनका ब्यौरेवार विवरण करो। स्मरण रहे कि तुम्हारा भाषण सुन कर अपरिचित मनुष्य भी उस विषयको भली भाँति समझ लें, यही तुम्हारा ध्येय होना चाहिए। जो बातें तुम्हें तुच्छ जँचती हैं संभव है कि वे ही दूसरोंको कठिन प्रतीत हों। अत एव उत्तम शिक्षककी नाईं कुछ समयके लिए उस विषयके बारेमें तुम्हें क्या क्या मालूम है यह भूल जाओ। परिचित भूमिके ऊपर भी नवसिखुएकी नाईं पाँवोंको सँभाल सँभाल कर रखना यह वक्ताका गुण सीखना प्रयोजनीय है।

पेचीले मामलों पर विचार करते समय कागज पर नोट कर लेना उत्तम है। ये संक्षिप्त नोट तुम्हारे बडे सहायक होंगे। व्यवसायके सम्बंधसे जो पत्र और कागजात तुम्हें प्राप्त हों उनको क्रम-वार योग्य स्थान पर रखना, उनका फाइल नंबर देना तथा एक विषयके सब कागजोंको एक साथ रखना इत्यादि व्यवसाय-सम्बंधी नैमित्तिक कार्योंकी ओर भी संचालकका पूरा पूरा ध्यान होना चाहिए। कागज-पत्र आवश्यकता पडने पर यदि न मिलें तो काम चल ही नहीं सकता। इसी भाँति जो कागज-पत्र तुम्हारे कार्यालयसे भेजे जायँ उनके विषयमें भी सावधानी रक्खी जाय। व्यवसाय-सम्बंधी कागजोंकी नकल ले लेना भी आवश्यक है। इन साधारण बातोंका उल्लेख करना पाठकोंको शायद तुच्छ जँचे, परन्तु हम जताये देते हैं कि जब तक ये बातें योग्य रीतिसे सम्पादित की जाती हैं तभी तक तुच्छ विदित होती हैं। अवसर पर इनका महत्त्व भली भाँति प्रगट हो जाता है।

कर्मचारियोंकी नियुक्ति।
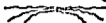
पिछले पाठमें बताया जा चुका है कि व्यवसायमें कारोबार चलानेके लिए बहुतसे कर्मचारियोंकी आवश्यकता पड़ती है। बड़े बड़े कलकारखानों, बैंकों और दूकानोंमें सैकड़ों मनुष्य काम करते हैं। मजदूरोंसे लेकर मैनेजर पर्यंत भिन्न भिन्न योग्यताके व्यक्तियोंको काम चलाना पड़ता है। राज्य-प्रबंधके भिन्न भिन्न विभागोंमें भी इसी भाँति हजारों मनुष्य नियुक्त होते हैं। यह तो हुई बड़े बड़े व्यवसायोंकी बात; परन्तु साधारण दूकानदारको भी एकाध मुनीम और चपरासी रखना पड़ता है। प्रत्येक मध्यम श्रेणीके गृहस्थको भी घरका काम-काज करनेके लिए एकाध टहलुवा मुकर्रर करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यका अनुभव है कि व्यापार अथवा गृहस्थीके कार्य नौकरोंकी योग्यता पर ही निर्भर रहते हैं। आज्ञाकारी और निपुण कर्मचारीका मिल जाना सांसारिक सुख और अभ्युदयका चिह्न माना गया है; परन्तु प्रत्येक मनुष्य योग्य कर्मचारियोंको ढूँढनेमें सफल नहीं हो सकता। नौकरोंकी नियुक्तिके विषयमें जानकारी प्राप्त किये बिना ही उन्हें रख लेनेके कारण आजकल कितने व्यापारियों और गृहस्थोंको हानि उठानी पड़ती है। यदि केवल आर्थिक हानिका ही प्रश्न होता तो अधिक चिन्ता न थी; परन्तु कभी कभी आर्थिक हानिके साथ साथ नैतिक दुराचार भी हो जाता है, अत एव व्यवसायके संचालकोंको कर्मचारियोंकी नियुक्तिके समय किन किन बातोंका विचार रखना चाहिए यही हम नीचे बताते हैं।

व्यवसायके संचालनमें निम्न कर्मचारियोंको सदैव बहुत बड़ा भाग लेना पड़ता है। मुनीम, कारिंदा तथा नीचे दरजेके नौकरोंके ऊपर कामकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी रहती है। व्यवसायके नैमित्तिक कार्य तो बहुधा ये ही लोग चलाते हैं। प्रणालीके निश्चित हो जाने पर कार्यके साधनोंको जुटाना और अपनी योग्यतानुकूल साधारण कार्योंका मार्ग निश्चित करना यह इन्हीं लोगोंका काम है। जो कर्मचारी

प्रतिनिधि-स्वरूप रहते हैं उनकी जिम्मेदारी तो लगभग मालिकके बराबर है। इस लिए व्यवसायको व्यवस्थित-रूपसे चलानेके लिए कर्मचारियों-को निर्वाचित करना, नियुक्त करना, उनके कार्यकी देख-रेख करना, उन्हें उत्तेजना देना और संतुष्ट रखना ये सब कार्य आवश्यक हैं। मालिक प्रत्येक स्थान और समय पर उपस्थित नहीं रह सकता। यदि नौकर ईमानदार और परिश्रमी न हो तो अड़चनका पार नहीं रहता। जिनकी भूलका दंड तुम्हें भोगना पड़े ऐसे मनुष्योंकी जाँच करनेमें जित-ना प्रयास किया जाय उतना ही अच्छा होगा।

किसी कर्मचारीको नियुक्त करते समय उस मनुष्यमें ज्ञान कितना है केवल यही देखनेसे काम न चलेगा। इसी भाँति केवल नैतिक चरि-त्रके कारण ही मनुष्य कार्य चलानेके योग्य नहीं हो सकता। ज्ञान और नैतिक चरित्रके साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि जिस कार्यके लिए उसकी नियुक्ति की जाती है उसको चलानेकी योग्यता उसमें है या नहीं। प्रत्येक कार्य्यमें कोई-न-कोई विशेष योग्यताकी आवश्यकता होती है। मुख्यतया इसीकी तलाश करनेसे काम चलेगा। कभी कभी मनुष्य-में कार्यके योग्य सब गुण विद्यमान रहते हुए भी एकाध ऐसा ऐब रहता है जिसको सरलतासे परखना मुश्किल होता है। इस लिए मनुष्यको नियुक्त करते समय यह जानना आवश्यक है कि तुम्हारे पास आनेके पहले उसने कौन कौनसा कार्य किया है और उन्हें कैसा चलाया है। व्यवहारमें मनुष्यको सर्टीफिकेट (प्रमाण पत्र) देनेकी प्रथा इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जारी है।

मनुष्यके पूर्व वृत्तान्तका जानना उसके चाल-चलन और स्वभावसे परिचित होनेका उम्दा साधन है। किसी कर्मचारीको नियुक्त करते समय उसके विषयमें थोडा बहुत पूर्व वृत्तान्त जान लेना आवश्यक है। इस विषयमें एक बात स्मरण रखना चाहिए कि परिस्थितिमें अन्तर पड़

जानेगे मनुष्यके विचार और कार्योंमें भी अंतर हो जाता है । इस लिए मनुष्यके पूर्व इतिहासको सुनते समय भिन्न भिन्न परिस्थितियों पर भी ध्यान रक्खो और तदनुकूल उस व्यक्तिके विषयमें अपना मन्तव्य स्थिर करो । एक-बार किसी व्यक्तिका चाल-चलन देख उसके विषयमें अपने विचारोंको सदैवके लिए दृढ़ कर लेना ठीक नहीं है । मान लो कि कोई मनुष्य आपसे बातचीत करनेमें गरम हो गया तो क्या इससे यह ठहरा लेना कि वह प्रत्येक कार्यमें क्रुद्ध हो जायगा, ठीक है ? अनुभव इस बातका साक्षी है कि कभी कभी एक मनुष्य, जो बातचीत करनेमें अच्छी योग्यता नहीं रखता है, वही लेखन-क्रियामें बड़ा चतुर है । अत एव मनुष्यके स्वभाव और योग्यताकी परख करते समय बड़ी गम्भीरता और शांतिसे काम लिया जाना चाहिए ।

अपने कर्तव्य और जिम्मेदारीका जिन लोगोंको अच्छा खयाल है ऐसे मनुष्योंकी नियुक्तिसे कार्य भली भाँति चलेगा । कारण यह है कि इस प्रकारके व्यक्ति अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिए चाहे जितना कष्ट उठानेके लिए तैयार रहते हैं । छोटी छोटी बातोंको भी ये लोग गौरसे देखना अपना कर्तव्य समझते हैं । इसी लिए इनके हाथों व्यवसायकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है । कर्मचारियोंमें चापलूसीका बड़ा भारी अवगुण होता है । अपने मालिककी हाँमें हाँ मिलाना ही ये लोग अपना कर्तव्य समझते हैं । जो आदेश मालिकके मुखसे निकला उसके बिना समझे बूझे ही ये लोग, इस डरसे कि कहीं लोगोंमें वे मूर्ख न समझे जायँ, चट हाँ कह देते हैं । परन्तु जिन मनुष्योंको अपनी जिम्मेदारीका ज्ञान है वे झूठमूठ हाँमें हाँ कभी न मिलावेंगे । चाहे आप उन्हें मूर्ख भले ही समझें । जब-तक किसी बातका वे भली भाँति निर्णय न कर लेंगे तब तक उसको स्वीकार करनेके लिए वे कभी तैयार न होंगे । इस कारण व्यवसायमें ऐसे मनुष्योंकी नियुक्तिकी बड़ी आवश्यकता होती है । खुशामदखोर

मालिक और संचालक ऐसे व्यक्तियोंको भले ही पसंद न करें; परन्तु विचारशील लोगोंमें तो ये अवश्य आदर पाते हैं । यदि संचालकको अपने व्यवसायकी सफलतासे ही प्रयोजन है तो उसे निष्पक्ष और खरी सुनानेवाले कर्मचारियोंको नियुक्त करनेमें न हिचकना चाहिए ।

अपने अधीन कर्मचारियोंके साथ सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रखना प्रत्येक अध्यक्षका कर्तव्य है । ऐसा करनेसे वे तुम्हें अपने हृदयकी बात सुनानेके लिए सदैव तैयार रहेंगे । मालिक और कर्मचारियोंका एकमत होनेसे व्यवसायका कार्य निर्विघ्न चला जाता है । दूसरा लाभ यह है कि कर्मचारियोंको स्वतंत्रता होनेके कारण वे तुम्हारे आदर्शों पर अपने मन्तव्य प्रकाशित कर सकेंगे और कभी कभी उनकी सम्मतिके अनुसार कार्य करनेसे लाभ भी होगा । विचारोंके कार्य-प्रणालीमें परिणत करते समय व्यावहारिक क्षेत्रमें नाना प्रकारकी बाधायें आती हैं । उन बाधाओं और त्रुटियोंसे वे ही मनुष्य परिचित रहते हैं जिनको अपने हाथोंसे काम करना पड़ता है । निदान यदि तुम अपने बताये हुए मार्गकी त्रुटियोंको जान कर उनको सुधारना चाहते हो तो अपने निम्न कर्मचारियोंको अपना मत प्रकाशित करनेकी स्वतंत्रता दिये रहो । अधीन कर्मचारियोंके मुँहको सीं रखना जुल्म है ।

अध्यक्षोंको चाहिए कि वे अपने अधीन व्यक्तियोंके कार्यमें आवश्यकतासे अधिक हस्तक्षेप न करें । ऐसा करनेसे उनमें स्वावलम्बनकी मात्रा कम हो जाती है और जरा जरासे कामोंमें भी वे तुम्हारे मुँहकी ओर देखने लगते हैं । यदि तुम्हें छोटी छोटी बातोंमें व्यर्थ सताये जाना बुरा लगता है तो उपर्युक्त वाक्यको सदैव स्मरण रक्खो । देखो, प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक सर वाल्टर-स्काट, राजनीतिज्ञ केनिंग(वाइसरायके पिता)के विषयमें कहते हैं—“मुझे भय है कि उन्हें हदसे ज्यादा परिश्रम करना पड़ता है । इसका कारण यह है कि वे प्रत्येक चीजको अपनी आँखों देखना और प्रत्येक कार्यको अपने ही

हाथों द्वारा करना चाहते हैं। यह अवगुण ही उनकी विडम्बनाका मूल है। इसके विपरीत प्रत्येक चतुर सेनापति और शासकको दूसरोंकी आँखोंसे देखनेमें और पराये हाथों काम करानेमें ही संतुष्ट होना चाहिए। अपने कर्मचारियोंको कार्यमें संलग्न रखनेमें ही उन्हें अपनी बुद्धिका उपयोग करना चाहिए।" स्काट साहबके विचार कई अंशों तक प्रत्येक व्यवसाय-संचालकके मनन करने योग्य हैं। इसमें संदेह नहीं कि वे अधिकारी, जिनके दिमाग फुर्तीले, बुद्धि पैनी और शरीर चुस्त हैं, अपने कर्मचारियोंके कार्यमें हस्तक्षेप करनेमें बड़े शौकीन होते हैं; परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि अध्यक्षका प्रधान कर्तव्य अपने अधीन व्यक्तियोंको स्वावलम्बनका पाठ पढ़ा देनेका है। उनको इस भाँति शिक्षा दी जाय कि काम पड़ने पर वे अध्यक्षकी सहायताके बिना भी कार्य चला सकें। सब कार्योंको प्रतिदिन देखनेके लिए अध्यक्षको न समय है न शक्ति, अत एव उसका कार्य कर्मचारियोंकी स्वतंत्रताको निर्धारित करने और उसके दुरुपयोगोंको रोकनेका ही है। ऐसा करनेसे कर्मचारियोंकी योग्यता बढ़ती है और वे अध्यक्षकी अनुपस्थितिमें कार्योंको सम्पादन कर सकते हैं।

ऐसे व्यक्तियोंको, जिन्हें तुमने अपना प्रतिनिधि मुकर्रर किया है, अपने हृदयकी गूढ़ बातें बतानेमें कभी आनाकानी मत करो। उनके कार्य-शक्तिकी हदबंदी भी साफ होनी चाहिए। परन्तु निर्धारित सीमाके भीतर कार्य करनेकी उन्हें बहुत कुछ स्वतंत्रता दी जाय। यदि किसी जटिल विषयमें तुम्हारा प्रतिनिधि तुम्हारे बताये उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जो उपाय करे उनसे तुम यदि संतुष्ट न होओ तो उसके ऊपर आज्ञा-भंगका अपराध न लगाना चाहिए। अपने आदेशोंको भली भाँति स्मरण रखना तुम्हारा कर्तव्य है। जितना कार्य करनेकी तुमने आज्ञा दी है उससे अंशमात्र कम करना यदि पाप समझा जाता है तो उससे अधिक कर-

नेके लिए अपने नौकरोंको घुड़काना भी तो अन्याय है। परन्तु स्मरण रहे कि साधारण कर्मचारी और प्रतिनिधिमें बड़ा अंतर है। निदान अपने प्रतिनिधिकी स्वतंत्रताको श्रृंखला-बद्ध करनेसे मालिककी भलाई कभी नहीं हो सकती। इस भाँति एक-बार भी पद-दलित होने पर प्रतिनिधिका कर्तव्य तुम्हारी लहरोंको पूर्ति करनेके सिवाय और क्या होगा? व्यवसायकी सफलताकी ओरसे तो उनका ध्यान अवश्य हट जावेगा। बताओ ऐसा होना किसे इष्ट है?

अपने कर्मचारियोंसे यदि खूब काम लेना चाहते हो तो परिश्रम करनेवालोंको उदारता-पूर्वक उत्तेजना देनेमें हाथ न सिकोड़ो। यदि परिश्रम करनेवालोंको इतना भी विदित हो जाय कि उनकी मेहनतको मालिक प्रसन्न-चित्तसे देख रहा है तो वे अपना कार्य उसी रीतिसे करते जाते है। इस कारण ऐसे व्यक्तियोंको अपनी संतुष्टिका परिचय दे देना प्रत्येक बुद्धिमान् संचालकका कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य-हीन और आलसी पुरुषोंको परिश्रमी बनानेके लिए शासनकी अपेक्षा उत्तेजनासे अधिक काम लिया जाय। इसी लिए पारितोषिक वितरण अथवा वेतन-वृद्धि करते समय कर्मचारियोंके परिश्रमकी ओर ध्यान रक्खो। ऐसे समय योग्यताकी ओर न देखना चाहिए। बार बार धमकाने, झिड़कने अथवा उपहास करनेकी खोटी आदतका परित्याग कर देना ही अच्छा है। इसी भाँति प्रशंसा और शाबाशी देते समय भी योग्य मात्राको सोच-विचार कर निश्चित करना चाहिए। ऐसा न हो कि इनके द्वारा लाभके बदले हानि हो जाय और इनको पानेवालेका सिर चढ़ जाय। ईमानदारी और परिश्रम इन दो गुणों पर विशेष ध्यान रखनेसे व्यवसायकी उन्नति होनेका मार्ग सरल हो जायगा।

उम्मेदवारोंसे व्यवहार।

बड़े बड़े साहूकारों, उच्च कर्मचारियों तथा अन्यान्य व्यवसाय-संचालकोंके पास प्रतिदिन कई व्यक्ति नौकरी पानेकी आशासे लम्बे लम्बे प्रार्थना-पत्र बगलमें दबाये हुए ढेरकी ढेर शिफ़ारिशें लेकर आया करते हैं। इनकी गरीबीको देख बहुधा दया आ जाती है। इनमेंसे अधिकांश योग्यता न रखते हुए भी सिर्फ प्रशंसा-पत्रोंके बलसे काममें घुसना चाहते हैं। अपने तईं आपके सम्बंधी बता कर कभी कभी रिश्तेदारीके नाते काम पा लेनेका प्रयत्न भी बहुधा किया जाता है। और कुछ नहीं तो वजनदार शिफ़ारिशोंको लाकर संचालकके चित्त पर असर डालना तो प्रायः प्रचलित ही है। ऐसे अवसरों पर इनकी प्रार्थनाको अस्वीकार करनेके लिए केवल नैतिक साहसका ही प्रयोजन नहीं रहता। परन्तु यह भी देखना पड़ता है कि किसी प्रकार कोई असुविधा न खड़ी हो जाय। उम्मेदवारोंमेंसे कई रूखा जवाब पानेसे असंतुष्ट हो नट-खट करनेमें लग जाते हैं। निदान ऐसे समय साँप-छछूँदरकी समस्या आकर उपस्थित हो जाती है। यदि व्यवसायमें अयोग्य कर्मचारी नियुक्त किये जायँ तो भी हानि होती है, इधर प्रार्थना-पत्र अस्वीकार करनेसे उम्मेदवार और उनके पृष्ट-पोषक असंतुष्ट होते हैं। ऐसे अवसर पर 'साँप मरे न लाठी टूटे' की कहावतके अनुसार जिन जिन युक्तियोंसे काम लेना चाहिए उनका उल्लेख हम नीचे करते हैं।

"आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।" इस उक्तिको स्मरण रख आजीविकाके उम्मेदवारोंसे दबी जीभसे कभी न बोलना चाहिए। ऐसा करनेसे व्यवहारमें बड़ी अड़चन प्राप्त हो जाती है। टो-टप्पी बातोंको कह कर किसीको झूठी आशामें रखना और कुछ समयके अनन्तर उसको 'नाहीं' करके निराश करना—यह विश्वासघाती कहलानेका मार्ग है। ऐसा

संकोच किस कामका जिसके कारण नाहक असमंजस हो जाय। अत एव प्रार्थी लोगोंसे व्यवहार करते समय नैतिक बल द्वारा काम लेना अच्छा है।

जिस बातको पूरा करना तुम्हारी शक्तिके बाहर हो, प्रार्थीके चित्तको उसकी ओर खींच उसे लुभाना और झूठी आशा देना भले मानसोंका काम नहीं है। उम्मेदवार लोग तुम्हारे मुँहसे निकले हुए शब्द मात्रके सहारे आशा-तरगोंमें पड कर मन-मोदक खाने लगते है। जैसे जैसे मनुष्यकी आशा बढ़ती जाती है उसीके अनुकूल उसको आनद भी प्राप्त होता है। कुछ कालके पश्चात् प्रार्थीकी आशाके बाँधको 'नाहीं' द्वारा तोडनेसे कभी कभी इसका परिणाम बड़ा भयंकर हो जाता है। किस्सोंमें पढा है कि भूतोंमें अपने शरीरको बडा बनानेकी शक्ति है। इस बातका चाहे कोई विश्वास करे अथवा न करे, परन्तु आशाका भूत चित्तमें एक-बार प्रविष्ट होते ही कैसे भयंकर परिणामसे बढने लगता है इस बातको सभी लोग जानते है। इस लिए उम्मेदवारोंसे ऐसी बातचीत कभी न करो जिससे उनके हृदयमें व्यर्थ ही आशाका संचार हो।

अर्थी-जन बहुधा दोषोंको नहीं देखते। स्वार्थसे प्रेरित होनेके कारण उन्हें जहाँ देखो वहीं अपना उद्देश्य दिखाई देता है। येन केन प्रकारेण उसीकी सिद्धिमें ये लोग संलग्न रहते है। इस लिए अपने प्रार्थना-पत्र पर जो उत्तर इनको प्राप्त होता है उसके शब्दोंका मतलब ये लोग बडी उदारतासे ग्रहण करते है। यदि शब्द निस्सार हों तो साक्षात् भेंटमें तुम्हारी मुखाकृतिको देख कर उसी परसे इनके हृदयमें आशा समा जाती है। अत एव जितने स्वच्छ हृदयसे व्यवहार करना तुमने सीखा हो उस सबका उपयोग करनेसे ही इन लोगोंसे पार पा सकोगे।

पीछेकी असमजसको मिटानेके अभिप्रायसे प्रार्थना-पत्रोंके उत्तर यथा-सभव लेख द्वारा दिये जाने चाहिए। यह उत्तर सरल और एकार्थ शब्दोंमें लिखा जाय। ऐसे गहन शब्दोंको, जिनका अर्थ साधारण लोग सर-

लताते नहीं समझ सकें, उपयोग करनेका स्थान व्यवसाय-सम्बन्धी कागज-पत्रोंमें न होना चाहिए। ऐसे समय भाषाकी ओर तुम्हें अशिक्षित व्यक्तियोंकी दृष्टिसे देखना चाहिए। ऐसा न हो कि तुम्हारे लेखका मतलब समझनेके लिए प्रार्थी बेचारेको कोषका उपयोग करना पड़े। भलमनसाहत और संकोचके लिहाजसे कोई शब्द ऐसे उपयोग न किये जायँ जिनके दो मतलब हों। बहुधा देखा गया कि बहुधा लोग इन्हीं शब्दोंपर जोर देंगे और बार बार कटाक्ष करेंगे। उच्च कर्मचारियोंको अपने व्याख्यानों तकमें शब्दोंका उपयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिए। लम्बे लम्बे शब्द और अलङ्कारोंकी भरमार करना व्यवसाय-संचालकके लिए आपत्ति-जनक है।

प्रार्थी लोगोंसे साक्षात् भेंट करते समय तीन बातोंको स्मरण रखना चाहिए। प्रथम बातचीत ऐसी न हो जिससे उनके हृदयमें झूटी आशाका संचार हो जाय। दूसरे ऐसे शब्द उपयोगमें न लाये जावें जिनका सुननेवाले दूसरा अर्थ समझ लें। तीसरे जो बातचीत हो उसके किसी अंशको प्रार्थी भूल न जाय। यह अंतिम बात सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। अत एव इसकी सिद्धिके लिए सदैव ऐसा अवसर लाया जाय ताकि साक्षात् भेंटके पश्चात् कुछ लेखिक कार्रवाई जरूर हो, जिसके द्वारा तुम अपनी मंशाको साफ साफ प्रकाशित कर सको। प्रार्थीकी योग्यतासे तुम यदि संतुष्ट न हो तो अपने शरीर और मुख परसे वैसे ही भावोंको झलकानेका प्रयत्न करो। साक्षात् भेंटकी विशेषता यही है कि उसमें केवल शब्दों द्वारा ही नहीं, मनुष्य अपनी शरीरकी आकृति द्वारा भी अपने भावोंको भली भाँति प्रकाशित कर सकता है। कभी कभी मनके वे सूक्ष्म भाव, जो शब्दों द्वारा प्रकाशित नहीं किये जा सकते, नेत्रों और मुँहकी आकृति परसे भली भाँति जाने जा सकते हैं। अत एव प्रार्थी लोगोंसे साक्षात् भेंट करते समय व्यवसाय-संचालकोंको मानसिक भावोंको प्रकाशित करनेमें भिन्न भिन्न

साधनोंकी ओर लक्ष्य रखना चाहिए। भेंटसे उकता कर उसकी समाप्तिके लिए ऊटपटाँग उत्तर देना अयोग्य है। अपने विचारोंको निधडक होकर प्रकाशित करते समय यदि हृदयमें इस भाँतिका भाव उठे कि तुम्हारे साफ़ जबाबसे सुननेवालेके हृदयमें पीड़ा होगी अथवा मुँह-फट नाहीं करनेसे किसी भाँति असमंजस होगा तो उस भावको नैतिक भीरुताकी संतान समझ हृदय हीमें दबादो। यदि अपने मालिकके हानि-लाभका विचार न करके घूँसखोरी करना पाप माना जाता है तो भलाई बुराईका विचार करके न्याय-मार्गसे विचलित होना भी अवश्य निन्दनीय है।

प्रार्थनाको अस्वीकार करते समय अपने कारणोंको प्रकाशित करना कब योग्य होगा और कब अयोग्य इसकी मीमांसा करना कठिन है। कारणको प्रकाशित करते समय पहले यह सोच लेना चाहिए कि वास्तविक बात कितने अंशों तक प्रकाशित की जा सकती है। व्यवसाय-संचालनके मूल उद्देशोंका वर्णन करते समय पिछले पाठमें हमने सत्यावलम्बनकी आवश्यकताको बताया है। प्रार्थना-पत्रोंका उत्तर देते समय और अपने कारणोंको प्रकाशित करते समय उसी सिद्धांतका अवलम्बन करना हितकारी है। यदि प्रार्थी ऐसा व्यक्ति हो, जिससे तुम्हारा अच्छा परिचय है और तुम्हें विश्वास है कि वह हठधर्मी नहीं है, तो उसके सामने अपने कारणों और दलीलोंको प्रकाशित करनेमें कोई हानि नहीं हो सकती। ध्यान रहे कि ऐसा करनेसे कहीं यशके बदले अपयशके भागी न बनाना पड़े।

यदि प्रार्थना-पत्र केवल धृष्टता-पूर्ण हो और उम्मेदवार बिलकुल योग्यता न रखते हुए भी किसी पदको प्राप्त करनेका दुस्साहस करें तो उनके प्रार्थना-पत्रको अस्वीकार करते समय कोई कारण न बताया जाय। उनकी धृष्टता और अहङ्कारका उल्लेख करना मानों शठको पंडित बनाने-

का प्रयत्न करना ही है। प्रार्थना-पत्रोंकी अस्वीकारताके लिए साधारण और बहुव्यापी कारणोंको बताना योग्य है। ऐसे गोलमाल शब्द जिनका मतलब ठीक ठीक न निकल सके, ऐसे मौके पर उपयोग किये जायँ। स्मरण रहे कि व्यवसाय-नीति और आचार-नीतिमें बड़ा अंतर है। एकके तत्त्वोंका दूसरी जगह अक्षरशः उपयोग करनेसे हानि होती है।

उन लोगोंको, जिन्हें प्रतिदिन कई आजीविकाके प्रार्थियोंसे मिलना पड़ता है और उनकी प्रार्थनाओं पर विचार करना पड़ता है, प्रार्थियोंके असमय आने पर और उनकी भ्रम-पूर्ण बातचीत सुन कर अथवा उनके अहंकारके कारण बहुधा गुस्सा आ जाता है। ऐसे व्यक्तियोंको सोचना चाहिए कि जिस पन्द्रह मिनटकी भेंटको वे इतना तुच्छ समझते हैं और जिसके कारण उनका जी ऊब उठता है उसी भेंटके लिए वेचारे प्रार्थीने कितना कष्ट उठाया है। पेटकी ज्वालासे संतप्त हो यदि मनुष्य अपनी प्रार्थनाको बार बार घिघिया कर कहे तो किसी सहृदय व्यक्तिको उससे कुपित न होना चाहिए। दरिद्रताकी व्याधिसे पीड़ित मनुष्य यदि रोगकी नाई चिड़चिड़े अथवा हठीले हों तो क्या आश्चर्य है?

पंचायत, कौंसिल और कमीशन।

समुद्योगसे चलनेवाले जितने कार्य हैं चाहे वे सामाजिक, राजनीतिक अथवा व्यापार-संबंधी क्यों न हों, उन सबमें लोक-मतसे परिचित होनेकी आवश्यकता हमेशा पड़ा करती है। कार्य-सिद्धिके लिए जितना बल अपेक्षित है उसको संग्रह करनेके लिए और वस्तुका चारों ओरसे अवलोकन कर साधनोंको उसके उपयुक्त बनानेके लिए जन-समूहको एकत्रित हो निष्पक्ष-भावसे किसी विषय पर विवेचन करना पड़ता है।

जिन कार्योंमें ऐसा प्रश्न बहुधा उपस्थित हुआ उनमें प्रति समय योग्य व्यक्तियोंकी नियुक्ति करना केवल अड़चन ही है। अत एव ऐसे व्यवसायोंके सम्बंधमें बहुधा पंचायत अथवा कौंसिलें नियत ही रहती हैं। इन संस्थाओंके सदस्योंका कार्य व्यवसाय-सम्बन्धी जटिल प्रश्नोंकी मीमांसा करना है। परस्पर वाद-विवाद द्वारा अपने अपने पक्षका समर्थन करना, दूसरोंकी बताई हुई प्रणालीके दोषोंको दिखाना—निदान बहु सम्मतिसे जो राय कायम हो उसीके अनुसार कार्य-प्रणालीको स्थिर करना यही इन संस्थाओंका उपयोग है। सामाजिक क्षेत्रमें प्रश्न चाहे कितना ही सरल क्यों न हो, एक व्यक्ति उसकी यथेष्ट मीमांसा कर ही नहीं सकता। यदि ऐसा करना संभव भी हो तो क्या; सामाजिक कार्योंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए जितने बलका प्रयोजन है वह समुद्योगके बिना कैसे हो सकता है? अत एव सामाजिक कार्योंका संचालन करनेके लिए पंचायतकी नियुक्ति आवश्यक है। समाज-शास्त्रके वेत्ता इस तत्त्वको प्राचीन समयसे ही स्वीकार करते आये हैं। इस लिए सामाजिक झगड़ोंका निपटारा करनेके लिए हमारे पूर्वजोंने पंचायतोंकी सृष्टि की थी।

पंचायत-शासनका क्षेत्र केवल सामाजिक-संगठन ही नहीं है। ज्यों ज्यों समाजका विकाश होता जाता है उसके भिन्न भिन्न अंग और उपांग क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर जटिल और गूढ़ होते जाते हैं। यही कारण है कि सामाजिक उन्नतिके साथ पंचायत-शासनका अधिकार भी नवीन नवीन क्षेत्रों पर बढ़ जाता है। राज्य-शासन और व्यवसाय-सम्बन्धी प्रश्नोंमें भी पंचायत-शासनकी आवश्यकता प्रचलित होने लगती है। कौंसिल, यूनियन इत्यादि नाम चाहे भिन्न भिन्न हों; परन्तु इन सब सभा-सुसाइटियोंका तत्त्व वही पंचायत-शासन है।

विकाशके नियमानुकूल पंचायतका संगठन, उसकी कार्य-प्रणाली और कार्रवाईके सिद्धान्तोंमें समयानुकूल संस्कार करनेकी आवश्यकता

पड़ती है । यदि निश्चेष्ट और निर्जीव अंगोंका परिष्कार न किया जाय और उनके स्थानमें समयानुकूल सजीव यंत्रोंको न रक्खा जाय तो यांत्रिक-पद्धति शीघ्र नष्ट होकर सारा व्यापार एकदम बंद हो जाय। इसी लिए संस्कारके बिना वस्तुओंका जीवन नष्ट होते देख प्राचीन ऋषियोंने संस्कारके महत्त्वको भली भाँति स्वीकार किया है । निदान पंचायतके पुराने सिद्धान्तोंको बदल समयानुकूल पद्धतिका ग्रहण करनेसे हम अपनी चिर-परिचित पुरानी संस्थाओंको अब भी मृत्युके पंजेसे छुड़ा सकते हैं । वर्तमानमें कौंसिलों, कमीशनों तथा और सभाओंका संगठन किन तत्त्वोंके आधार पर किया जाता है यह जान कर ही हम अपनी पंचायतोंमें सुधार कर सकते हैं । इसी अभिप्रायसे इस लेखमें कौंसिलोंके विषयमें कुछ विचार किया जावेगा ।

कौंसिलोंको कई मनुष्य अनादरकी दृष्टिसे इस लिए देखते हैं कि वे समझते हैं—रुपया बरबाद करनेकी यह एक युक्ति है कि जो काम एक व्यक्ति आसानीसे कर सकता है उसीको पूरा करनेके लिए चार चार मनुष्य नियुक्त किये जायँ । परन्तु संतोषकी बात है कि इस प्रकारके मनुष्य बहुधा अशिक्षित जन-समुदायमें ही पाये जाते हैं । इन्हें न तो समाज-शास्त्रके प्रश्नोंकी जटिलताका ही बोध है और न ये व्यक्तिगत उच्छृंखलतासे ही परिचित हैं । इन्हें मालूम नहीं कि व्यक्तिगत शक्ति यदि एक मनुष्यके पास परिमाणसे अधिक संचित हो जाय तो उसका परिणाम सदैव हानिकारक होता है । स्वार्थ-भाव, पक्षपात, शक्तिके दुरुपयोगकी लालसा और नट-खट इत्यादि अवगुण मनुष्यके स्वभावमें ऐसे ठसे रहते हैं कि उनका प्रतिकार करनेके लिए सत्ताका विभाग करना ही उत्तम उपाय है । कौंसिलोंकी नियुक्तिका एक अभिप्राय तो यह है । दूसरे, एक व्यक्ति सामाजिक प्रश्नों पर भली भाँति विचार करनेको समर्थ नहीं हो सकता । भिन्न भिन्न रुचियों और स्वभावों पर एक

ही वस्तुका असर भिन्न भिन्न प्रकार पडता है। किसी खास कार्रवाईको लोग किस दृष्टिसे देखेंगे इसका एक व्यक्तिकी अपेक्षा कौंसिलसे उम्दा पता लग सकता है। तीसरे यदि व्यवसाय भारी है तो शिर्फ सुभीतेके लिए उसके भिन्न भिन्न विभाग भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी अध्यक्षतामें रखना पड़ेंगे। अन्यथा कार्यके भारसे एक व्यक्ति दब कर शीघ्र ही घबड़ा उठेगा। व्यवसायके भिन्न भिन्न विभागोंमें शक्तिका यथेष्ट संचार करनेके लिए कौंसिलकी आवश्यकता प्रतीत होती है। वाष्प-यंत्रमें जिस भाँति शक्ति-वाहक चक्रोंकी योजना की जाती है उसी प्रकार व्यवसाय-संचालनमें कौंसिलकी नियुक्तिसे प्रत्येक विभाग समुचित रीतिसे उन्नति कर सकता है। समुद्योगके विचारसे, विचार-शक्तिको एकत्रित करनेके अभिप्रायसे भी कौंसिलोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है। शक्तिका दुरुपयोग करनेवाले स्वेच्छाचारी मनुष्य कौंसिलोंका नाम सुन कर भले ही नॉक-भौं सिकोड़ें; परन्तु आजकलके उन्नत समाजको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए प्रत्येक क्षेत्रमें यथा-संभव कौंसिलोंकी नियुक्ति करना लाभदायक होगा।

व्यवसायके सम्बंधमें कौंसिलों अथवा पंचायतोंके लाभ क्या है इस बातको देखनेके लिए पश्चिमकी किसी राजनीतिक अथवा व्यापारी संस्थाको लेलो। ब्रिटिश राज्यका प्रबंध करनेवाली पार्लिमेंट नामकी संस्थाको देखनेसे विदित होता है कि पंचायत-शासनके समान उपयोगी कोई और शासन-प्रणाली नहीं है। बड़ी बड़ी बैंकोंका प्रबंध करनेके लिए 'बोर्ड आफ डायरेक्टर्स' नाम पंचायत रहती है। यथार्थ विचार-तारतम्यको देखनेके लिए, घूसखोरीको कम करनेके लिए और जन-साधारण पर प्रभाव डालनेके लिए पंचायत एक ही साधन है। निष्पक्ष वाद-विवादके द्वारा वस्तुकी यथार्थ आलोचना करना तथा सत्यका निर्णय करना ये पंचायतके द्वारा सरलतासे सिद्ध किये जा सकते हैं। देखो, व्यक्तिकी अपेक्षा पंचायतमें साहसकी मात्रा भी बहुत

अधिक पाई जाती है। जन साधारण उपहास और निन्दाके द्वारा एक व्यक्तिको भले ही विचलित कर डालें; परंतु पंचायतके ऊपर उनका कुछ भी असर नहीं होता। यदि कार्यकर्ता एक व्यक्ति हो तो लोग उसके सार्वजनिक कार्योंकी आलोचना करनेमें बहुधा उसके व्यक्तिगत दोषोंकी ओर अधिक लक्ष्य देते हैं। फल इसका यह होता है कि वे उस व्यक्तिका और उसके कार्योंका निष्पक्ष विचार नहीं कर सकते और वृथा उसके मार्गमें कंटक बो देते हैं। फलतः सर्व-साधारणको लाभ होनेके बदले केवल हानि ही होती है। परन्तु पंचायतोंके सम्बंधमें लोगोंको प्रत्येक मेम्बरके व्यक्तिगत दोषोंको देखनेके लिए समय ही नहीं मिलता। अत एव कौंसिलके कार्योंकी समालोचना बहुधा निष्पक्ष भावसे की जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि पंचायत-समूहमें मेम्बरोंकी व्यक्तिगत सत्ताका बहुत कुछ अभाव-सा होता है। लोगोंका ध्यान किसी विशेष मेम्बरकी ओर न जाकर कुल समुदायको ही देखता है। परन्तु हम कहते हैं कि ऐसा होना ही पंचायतोंके बल और प्रभावका कारण है।

कौंसिल अथवा पंचायतका उपयोग बताते समय ऊपर कह आये हैं कि विस्तृत सामाजिक प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए कौंसिलोंकी नियुक्ति आवश्यक है। सामाजिक प्रश्नोंका मतलब यही है कि जहाँ लोग सम्मिलित हों। समुयोगके द्वारा कार्य संचालन करें। सिद्धांत यह है कि यदि किसी प्रश्नका असर जन-साधारण पर पड़ता है तो उस प्रश्नको हल करनेके पेश्तर जन-साधारणका मत संग्रह कर लिया जाय। जिस व्यक्ति-समुदायके हानि-लाभका प्रश्न है उसकी राय लिये बिना किसी कार्यको करना अन्याय है। अत एव ऐसी दशामें उस समुदाय-विशेषके प्रतिनिधियों-द्वारा उनके विचारोंका पता लगा उस पर केवल एक व्यक्ति ही नहीं वरन पंचायतके सब मेम्बर यथाशक्ति विचार करें। इस बातको दुहराना अनुचित न होगा कि सामाजिक कार्योंके गुण-दोषोंकी पूरी पूरी आलो-

चना करना एक व्यक्तिकी शक्तिसे परे है। स्वभावकी विशेषताओंके साथ-ही-साथ व्यक्तिकी आदतोंका भी उसकी विचार-शैली पर बडा प्रभाव पडता है। संभव है कि संचालकका स्वभाव मिलनसार न हो। जन-साधारणसे परिचित हुए बिना उनके विचार कैसे जाने जा सकते हैं। अत एव कौंसिलको जो जो भिन्न भिन्न प्रकारके काम करना पड़ते हों और वे कार्य जिन विशेष विशेष व्यक्ति-समूहोंसे सम्बंध रखते हों, कौंसिलका वह मेम्बर जो इन कामोंसे सम्बंध रखता है उसी व्यक्ति-समूहसे निर्वाचित किया जाना चाहिए। निदान भिन्न भिन्न सदस्योंकी नियुक्तिमें यही तत्त्व कार्यकारी होगा। यदि कौंसिलोंका संगठन इस भाँति किया जाय तो व्यवसायके भिन्न भिन्न अंगोंको यथेष्ट उत्तेजना मिल सकेगी।

पंचायतोंके संगठनका कार्य बडा नाजुक और कठिन है। योग्य मेम्बरोंको निर्वाचित करनेका प्रबंध उतना सरल नहीं है जितना कि लोग उसे समझते हैं। इसी लिए कौंसिल-शासन या तो बहुत ही कल्याणकारी हो जाता है अथवा बहुत ही हानिकारक। दूसरे संगठन-कार्य हो चुकने पर भी इनके द्वारा कार्य-प्रणालीका संचालन करानेमें भी विशेष सावधानी रखनी पडती है। अन्यथा सिवाय आपसी वैमनस्य या मौज उडानेके इन संस्थाओंके द्वारा और कुछ नहीं हो सकता। इन असुविधाओंको मेटनेके लिए दो बातों पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। पहले कर्तव्य और जिम्मेदारीका भली भाँति विभाग कर दिया जाय, जिसमें कि सदस्य लोगोंको निठल्ले बैठने अथवा एक दूसरेकी ऐबजोही करनेका अवसर ही न मिले। अपने अपने कर्तव्यका यदि प्रत्येक व्यक्ति पालन करे तो वैमनस्यका निर्वाह कैसे हो सकता है। दूसरे, पालिसीका लगातार तारतम्य जैसा व्यक्तिगत शासनमें होता है पचायत-शासनमें भी उसे यथाशक्ति वैसा ही सम्बद्ध रखनेका प्रयत्न किया जाय। इस लिए कार्य-नीतिको समय समय दुहराना उत्तम होगा।

पंचायत अथवा कौंसिलोंमें फूट हो जानेका प्रधान कारण यह है कि यदि कोई सदस्य किसी कार्य विशेषके सम्बन्धमें अपने सहयोगियोंसे सम्मत नहीं होता तो वह इस बातको गुप्त रखनेके बदले जन-साधारणके प्रति प्रगट कर बैठता है। इतना ही नहीं, अपमानकी अग्निसे धधक कर वह उनके दोषोंकी कठोर समालोचना करने लगता है और अपने मनगढ़ंत किस्से लोगोंको सुनाता फिरता है। फलतः नट-खट-प्रिय मनुष्य उसे आश्वासन देकर नाना प्रकारके कर्ण-प्रिय शब्दों द्वारा उसकी क्रोधाग्निको और भी प्रज्वलित कर देते हैं। बस फिर क्या, खूब उखाड़-पछाड़ होने लगता है। यहाँ तक कि आपसमें जूती-पैजार तककी नौबत आ जाती है। इस निन्दनीय दृश्यकी जड़को उखाड़नेका उत्तम उपाय यही है कि पंचायतके सम्मुख ही सदस्य लोग एक दूसरेके विचारों पर टीका-टिप्पणी करें। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान इस कार्यके करने योग्य नहीं है।

कौंसिलके सदस्योंकी संख्या कार्यके प्रसार और विस्तार पर अवलम्बित है। स्मरण रहे कि ऐसी संस्थाओंकी कार्यकारिणी-कमेटीमें मेम्बरोंकी संख्या बहुत न बढ़ाई जावे। कार्यकारिणी-सभामें काम करनेवालोंकी ही नियुक्ति होनी चाहिए। यहाँ बतक्कड़ों अथवा विचार-रोगियोंकी आवश्यकता नहीं है। साधारण-सभाकी बात और है। वस्तुका विवेचन करनेमें जितने अधिक व्यक्ति शामिल हों उतना ही अच्छा है। परन्तु एक-बार कार्य-प्रणाली निर्दिष्ट होने पर उसे अमलमें लानेके लिए बड़े समूहकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि कोई कहे कि कार्यकर्ताओंकी संख्या अधिक होनेसे कार्यकी देख-भाल अधिक होगी, सो सत्य नहीं है। संख्या चाहे कितनी ही बड़ी हो काम करनेवाले सदैव थोड़े ही मनुष्य होंगे। व्यर्थ ही संख्या बढ़ जानेसे वास्तविक कार्यकर्ता अपने कर्तव्यको भली भाँति न तो पालन कर सकेंगे और न ऐसा करनेके लिए उनका चित्त ही चाहेगा। इसके सिवाय दूसरी हानि यह होगी कि पंचायतमें पक्षे पड़ जायँगी और कार्यमें नवीन नवीन बाधायें आकर उपस्थित होंगी।

कार्रवाईको व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिए इन संस्थाओंकी बैठकोंमें जो कुछ काम किया जाय, प्रत्येकमें नियमोंकी पाबंदी पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। तुच्छसे तुच्छ नियमकी अवहेलना करना मानों पंचायतका गला घोंटना ही है। स्मरण रहे कि अनियमित कार्रवाई बढ़ते बढ़ते यहाँ तक पहुँचेगी कि पंचायत और हाटमें कोई अंतर न रहेगा। प्रत्येक मनुष्यको हमारी सामाजिक पंचायतोंका अनुभव होगा। सोचो तो सही कैसा तमाशा दिखाई पड़ता है। यह सब नियमोंकी अवहेलनाका ही फल है। इस लिए अध्यक्षका कर्तव्य है कि अनियंत्रित धींगाधींगीके भयसे प्रत्येक नियमका अक्षरशः पालन करनेके लिए वह प्रत्येक मेम्बरको बाध्य करे। ऐसा किये बिना संस्था कितनी ही उन्नत क्यों न हो, उसके मेम्बर कितने ही शिक्षित क्यों न हों, धीरे धीरे उसकी दशा हमारी पंचायतोंके समान ही होगी। देखिए, सत्रहवीं सदीमें विलायतकी पार्लिमेंट महासभाकी प्रिवी-कौंसिल (मंत्री-सभा) का उल्लेख करते समय एक लेखक फरमाते हैं कि—" आजकी कमेटीमें गया, बापरे बाप! कैसा दृश्य है, सब लोग खड़े हैं, कोई आता है, कोई जाता है, कोई चिल्लाता है कि कुछ भी काम नहीं होता। इतने हीमें एक महाशय गर्ज कर फरमाते हैं कि दो घंटे हो चुके अभी तक अमुक साहब तशरीफ नहीं लाये। अंतमें एक लार्ड सदस्यने झुंझला कर कहा—राजा साहबका आना आवश्यक है, क्योंकि उनके उपस्थित हुए बिना कुछ काम नहीं होता।" नियमोंको थोड़े ही शिथिल हो जानेसे यदि ब्रिटिश-राज्यके भाग्यकी विधाता मंत्री-सभामें ऐसा हास्य-प्रद दृश्य हो तो और संस्थाओंका क्या पूछना?

यदि कमेटी, पंचायत अथवा तदनुरूप और और संस्थाओंसे सचमुच लाभ उठाना है तो प्रत्येक संचालकको यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि इनके सिपुर्द कौनसा कार्य करना ठीक होगा। स्मरण रहे

कि प्रत्येक कार्यको हम तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं । (१) प्रारम्भीय, (२) तर्क-वितर्क, (३) पूर्णता । यदि तुम्हें कार्यको शीघ्र निपटाना ही अभीष्ट है तो उसकी पहली और अंतिम श्रेणी पर कौंसिलका अधिकार न होने दो । तर्क-वितर्क द्वारा कार्य-प्रणालीको निश्चित करनेकी जवाब-देही, बस यही कौंसिलका कर्तव्य होना योग्य है ।

प्रारम्भिक कार्रवाईको यदि कई मनुष्योंके सिपुर्द किया जाय तो बहुत-सा समय और श्रम अवश्य निरर्थक जावेगा । इसी भाँति कार्यकी पूर्णताके लिए एक व्यक्तिका अधिकार ही अपेक्षित रहता है । निदान कमेटीके सम्मुख किसी विषयको पेश करनेके पहले उस विषयकी प्रारम्भीय बातोंका निर्णय करनेके लिए सेक्रेटरीकी आवश्यकता होती है । यह कर्मचारी, विषयको छीलछाल कर जिन जिन बातों पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है उन्हें महत्त्वका स्थान दे कौंसिलका ध्यान उनकी ओर विशेष-रूपसे आकर्षित करता है । ऐसा होनेसे शक्तिका उपयोग केवल प्रयोजनीय बातों पर ही होता है । असम्बद्ध बातोंमें समयको नष्ट होनेसे बचाना यदि इष्ट है तो पंचायतके कार्यका श्रीगणेश उपर्युक्त रीति द्वारा होना चाहिए । सेक्रेटरीका कर्तव्य है कि उल्लेख योग्य विशेष विशेष बातोंकी सूची कौंसिलके मेम्बरोंके पास कुछ समय पूर्व ही पहुँचा दे । ऐसा करनेसे प्रत्येक सदस्य उन विषयों पर अपने विचारोंको स्थिर कर सकेगा । लेखिक कार्रवाईकी प्रशंसा करते हुए तत्त्ववेत्ता बेकन लिखते हैं कि “ ऐसा करनेसे कौंसिलको प्रेषित विषयों पर विचार करनेमें बड़ी सुविधा होती है । प्रस्तावित विषय कितना ही तुच्छ क्यों न हो कौंसिलकी कार्रवाईमें उसे महत्त्व-पूर्ण विषयोंके समान ही अधिकार दिया जाना चाहिए । ”

कौंसिलके प्रत्येक सदस्यको अपने अपने कर्तव्यकी जिम्मेदारीसे परिचित रखनेके लिए समय समय पर उन्हें प्रस्ताविक कार्रवाई सुना दी जाया करे

और कार्रवाईके रजिस्टर पर उनके दस्तखत भी ले लिये जायँ। देखो, जो व्यक्ति बिलकुल ला-परवाह हैं उन्हें भी ऐसी बातों पर सही करनेमें असमंजस प्रतीत होता है जिनको कि उन्होंने भली भाँति ध्यान-पूर्वक न सोचा हो। प्रत्येक विषय पर सब मेम्बरोंकी सही लेना अथवा नहीं इस विषयमें लोगोंमें मतभेद हो सकता है। सही लेनेसे हमारा अभिप्राय यही है कि ऐसे सदस्योंको, जो कार्यमें भाग लेना पसंद नहीं करते, कुछ उत्तेजना मिले। इसके विरुद्ध यदि दस्तखत करानेका कार्य एक शुष्क-प्रणालीकी नाई समझा जावे तो उसका अवलम्बन करनेसे लाभके बदले हानि ही होगी। जिस भाँति कौंसिलके मेम्बरोंके अधिकार और कर्तव्यकी सीमाको भली भाँति निर्दिष्ट कर देना संचालकका कर्तव्य है उसी प्रकार कार्यके प्रारम्भिक विभागको तय करनेवाले कौंसिलके सेक्रेटरीके कर्तव्य और अधिकारको साफ़ शब्दोंमें ठहरा देना भी आवश्यक है। उन्हें जहाँ तक हो सके कार्य-प्रणालीका दिग्दर्शन लेख द्वारा दिया जाय।

कमीशन अथवा पंचायतोंमें किस प्रकारके सदस्य निर्वाचित किये जायँ, इस विषयके बारीक बारीक नियमोंका उल्लेख करनेके लिए यह स्थान ठीक नहीं है। इस विषयमें केवल इतना कह देना ही बस है कि जिस श्रेणीके मनुष्योंके भावोंसे परिचित होनेकी आवश्यकता हो उसी श्रेणीके अग्रगण्य पुरुषोंको कमीशनमें सम्मिलित करनेका प्रयत्न किया जाय। भिन्न भिन्न प्रकृति और विचारोंके मनुष्योंको एक निर्दिष्ट विषय कहाँ तक रुचता है यह भी जाननेकी कोशिश की जानी चाहिए। यदि किसी मनुष्यने ऐसे अपराध किये हैं जिनके कारण समाजमें लोग उसे अनादरकी दृष्टिसे देखते हों तो उसे पंचायत अथवा कमीशनका मेम्बर निर्वाचित करना योग्य न होगा। किसी मनुष्यको नियत करनेके पहले उसके स्वभावसे भली भाँति परिचित हो लेना अच्छा है। कई मनुष्य स्वार्थी और अभिमानी होने पर भी अच्छे सलाहकारक

होते हैं। उनका स्वभाव चिड़-चिड़ा होने पर भी वे दूसरोंके साथ व्यवहार करनेमें न्याय-सङ्गत रहते हैं। ऐसे मनुष्य अपने प्रतिपक्षियोंके कटाक्षोंको सहन करनेमें शूरवीर और मित्रतामें गाढ़ स्नेही होते हैं। ऐसे ही मेम्बर कौंसिलोंमें अच्छा काम कर सकते हैं। निदान मनुष्यको समुयोगके तत्त्वोंसे परिचित रहनेके साथ-ही-साथ दूसरोंके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करनेकी सबसे पहली आवश्यकता होती है।

अपने प्रतिपक्षियोंसे वाद्-विवादमें पराजित होने पर भी सदैव प्रसन्नचित्त रहना और व्यावहारिक कार्योंका इतना शौक रखना कि अपने विपक्षियोंके सिद्धान्तोंको भी भली भाँति मनन करनेके लिए तैयार रहना, ये कौंसिलके उम्मेदवारोंके मुख्य गुण हैं। यदि ऐसे मनुष्य निर्वाचित किये जायँ तो वास्तवमें सभा अथवा कौंसिलोंके कार्योंमें बड़ी सुविधा होगी। क्योंकि ये लोग अपनी जिम्मेदारीको दूसरोंके सिर टालना पाप समझते हैं। यदि उनकी बतालाई हुई अड़चनें भी कार्यमें आ उपस्थित हों तो अपने मतकी पुष्टिके अभिप्रायसे उनको इंगित करके दूसरोंको नीचा दिखाना ये अच्छा नहीं समझते। ऐसे मनुष्योंके साथ काम करनेमें चित्त सदैव प्रसन्न रहता है। अपने चित्तकी बातको इनके सामने निःसंकोच कहनेमें कुछ भी असंमजस नहीं होता। वे मनुष्य, जिनको कार्य-प्रणाली निश्चित करना भली भाँति मालूम है और जो उभय पक्षके तर्क और प्रमाणोंको भली भाँति तौल सकते हैं, कौंसिलोंमें अवश्य नियुक्त किये जाने चाहिए। बिना ऐसे मनुष्योंके इस बातका निश्चय नहीं होता कि कौनसा प्रश्न प्रबल है, किस भाँति काम किया जाना चाहिए और कितनी उन्नति हो गई है। बिना यह सब जाने कार्रवाईकी उन्नति कैसे हो सकेगी। वाद-विवादके पश्चात् बहुमतको निश्चित कर उसीके अनुसार कार्य चलाना बस यही तो कौंसिल-शासनका मुख्य उद्देश्य है।

पक्षपात।

सम्मिलित उद्योग द्वारा संचालित होनेवाले जितने कार्य हैं उनमें कार्य-प्रणालीका बहु-सम्मति द्वारा निर्णय करते समय नाना प्रकारकी विघ्न-बाधायें आकर उपस्थित हो जाती हैं। इन अड्चनोंमें सबसे प्रधान पक्षपात है। पंचायत द्वारा होनेवाले लाभोंकी भ्रूण-हत्या करने और आपसी असमंजस द्वारा कार्य-प्रणालीका गला घोंटनेका पाप इसी पक्षपात-पिशाचके सिर पर रक्खा जाना चाहिए। प्रत्येक विचारशील व्यक्तिका अनुभव है कि सार्वजनिक कार्योंकी उन्नतिके मार्गमें यदि कोई खाई है तो यह वही पक्षपात है। विचार-शक्तिकी आखों पर पट्टी बाँध उसे अंधा बनानेकी सामग्री भी यही है। दिन-दहाडे आरोग्य नेत्रोंवाला मनुष्य यदि काले पदार्थको पीला और पीलेको काला देखने लगे तो लोग अवश्य आश्चर्य करेंगे; परन्तु पक्षपात-रूप चश्मे द्वारा वस्तुओंके असत् रूपको देख बडे बड़े विद्वानोंको थोड़ासा भी आश्चर्य नहीं होता। बतलाइए यह कितने दुःखका विषय है।

पक्षपातके कारण मनुष्य जितनी नीचतायें करता है यदि वे वास्तविक रूपमें प्रगट होतीं तो समाज उन्हें कभी सहन न कर सकता। परन्तु अपने असली स्वरूपको परोपकार, देश-सेवा और न्याय-प्रियताके वेषमें छिपा कर दम्भी-जन जब महात्माओंके रूपमें समाजमें मिलते-जुलते हैं तब उनके कपट-व्यवहारको समझनेमें साधारण मनुष्य बिलकुल असमर्थ हो जाते हैं। अपने विश्वास-घातका बदला फिर ये लोग नमस्कार और भेंट द्वारा प्राप्त करते हैं। शासनके लिए जिस शक्तिकी इतनी भारी आवश्यकता होती है उसी शक्तिको मनुष्य पक्षपातमें पड़ नाहकके झगड़ोंमें खर्च कर डालते हैं। चित्तमें झंझटोंका संचार रहनेके कारण मनुष्यकी प्रकृतिमें शक्कीपन और अनुदारताका प्रवेश हो जाता है। यदि यह

अवगुण अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित मनुष्योंमें ही पाया जाता तो अधिक चिंताकी बात न होती । पर जान पड़ता है कि शिक्षाकी उन्नतिके साथ-ही-साथ मनुष्यमें पक्षपातकी मात्रा भी क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होती जाती है । इसी लिए शिक्षितोंमें बहुधा हठधर्म और पक्षपात अपनी चरम सीमा तक पाये जाते हैं । यहाँ तक कि जान-बूझ कर असत् पक्षका ग्रहण करने पर भी ये लोग अपने तई सत्य-खोजी कह कर पुकारनेका दुस्साहस करने लगते हैं । पक्षपातसे प्रेरित हो शिक्षित लोग वृथा ही धर्म और न्यायकी दुहाई दे दे कर सत्य-पक्ष और उसके अनुयायियोंकी निंदामें निमग्न रहते हैं । ऐसे मनुष्योंके लिए सत्य और कोई वास्तविक चीज नहीं केवल नाम ही है ।

पक्षपात हीके कारण शक्तिशाली राष्ट्र बहुधा अपनी अधीन जातियों पर अन्याय किया करते हैं । स्वार्थान्धताके कारण बड़े बड़े राजनीतिज्ञ भी बच्चोंकी नाई भूलें कर बैठते हैं और फिर उन भूलोंको सत्य सिद्ध करनेका झूठा प्रयास करते हैं । अन्यान्य राष्ट्रोंसे व्यवहार करनेमें भी पक्षपातके कारण कभी कभी ऐसी गल्तियाँ हो जाती हैं जिनके कारण घोर युद्ध मच जाते हैं और रक्तकी नदियाँ बह निकलती हैं । पक्षपातका भूत सवार होते ही मनुष्यकी विचार-शक्ति मानों लकवेसे पीड़ित हो बिलकुल निर्जीव-सी हो जाती है । कितना ही नीच कृत्य क्यों न हो पक्षपातका अंधा उसमें अवश्य कूद पड़ेगा । मनुष्य पक्षपातकी मदिरासे मस्त होकर अपने चित्तमें विचारने लगता है कि मानों वह निर्बलों और गरीबोंका उपकार करके प्राचीन क्षत्रियोंकी नाई पुण्य संचय कर रहा है । परन्तु यह सब उसकी कल्पना-मात्र ही है । सच पूछो तो उसे दयाका मतलब ही मालूम नहीं है । उसको जानना चाहिए कि वह तो अपने आपे हीमें नहीं है । उसकी सारी चेष्टायें पक्षपात-रूप भूतकी प्रेरणा हीसे सञ्चरित हो रही हैं । असंगत और अनर्थ-मूलक मित्रता और बिना बुलाई हुई शत्रुताकी

जड यही पक्ष श्रद्धा है। जिस भाँति दूरबीनके काच पर पड़ी हुई कण-राशि अथवा कीटाणु दूरवर्ती पदार्थोंका स्वरूप बिलकुल उलटा बतानेमें सहकारी होते है उसी प्रकार मनुष्यकी मानसिक दृष्टि पक्षपातके मैलसे बिगड़ जाती है उसे शत्रु मित्र और मित्र शत्रुके समान प्रतीत होने लगते है।

अपने हठधर्मकी सिद्धिके लिए मनुष्य नीचसे नीच साधनोंका उपयोग करनेसे नहीं हिचकता। रोके जाने पर अपने प्रतिपक्षी पर वह भूखे बाघकी नाईं टूट पडता है। अपने कुटिल कार्योंकी पुष्टिमें वह दूसरोंके नीच कार्योंके दृष्टांत देने लगता है। समाजिक कार्योंकी मिट्टी पलीत होनेका वास्तविक कारण यही आपसकी खींचतान है। इसक प्रवाहमें पड कर हमारे सामाजिक तत्रकी यह अधोगति हुई है। पचायतोंकी सत्ताके नाश होनेका और कौनसा कारण है? राजनीतिके क्षेत्रमें भी पक्षपात और हठधर्मका बडा प्रबल अधिकार है। अपने प्रतिपक्षीसे वाद-विवाद करते अथवा प्रश्न पूछते समय पक्षपातके अंध-भक्त ऐसा अनुचित बर्ताव करते है कि जिसके कारण उसके चित्तमें निष्कारण खेद उत्पन्न होने लगता है। 'सफलताके भागी हम्हीं' इस भाँति विचार कर अन्य पक्षको दोषका भागी ठहराना यह झगडेका मूल है। ऐसे अन्याय पूर्ण व्यवहारसे असतुष्ट हो प्रतिपक्षी भी जलते तेलके बेगन बन जाते है। निष्पक्ष हृदय होने पर मनुष्य जिन बातोंकी ओर आँख उठा कर देखना भी पाप समझता है, हठधर्म उपस्थित होने पर उन्हीं बातोंको वह श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखने लगता है।

लोग समझते है कि सार्वजनिक कार्य बहुधा पक्षपातके बिना चल ही नहीं सकते। वे कहते है कि चार मनुष्य मिल कर जब किसी विषय पर विचार करते हैं तब उनमें पक्षका पड जाना तो साधारण बात है। पक्षपातको रोकनेके लिए कोई विशेष नियमोंकी आयोजना हो ही नहीं सकती। ऐसा विचारना भ्रम-मूलक है। यदि पक्षपात सचमुच हानिकारक वस्तु है तो उसको दबानेकी चेष्टा क्यों न की जानी चाहिए?

हमारे प्रतिपक्षी जो कुछ कार्य करते हैं उन सभीमें उनका अभिप्राय हमें हानि पहुँचाने और हमारा अहित साधन करनेके सिवाय और कुछ नहीं है, ऐसा मान लेना राज्य-प्रबन्धके सम्बन्धमें बड़ा ही भ्रम-मूलक और अनिष्टकारी है। ऐसा मानना ही तो पक्षपात और हठधर्म है। मनुष्य-स्वभावसे जो लोग परिचित हैं वे तुरन्त कह देंगे कि ऐसा मनुष्य शायद ही मिलेगा जिसके सब कार्य एक ही अभिप्रायकी सिद्धिके लिए किये गये हों। मान लो कि तुम्हारी कल्पना सत्य भी हो तो अपने विपक्षियोंको अपने अनुकूल बनानेके लिए उनसे शत्रुता मान उनको भला-बुरा कहना क्या यही सर्व-श्रेष्ठ उपाय है? इतिहासके पत्रोंको पलटनेसे विदित होता है कि दो जातियोंकी भयानक शत्रुताका मूल कारण बहुधा ईर्षा और पक्षपात ही होता है। सत्ता और अधिकारके मदमें मतवाली हो जब एक बलवान् जाति किसी निर्बल और पराजित जातिके वास्तविक गुणोंको स्वीकार करनेके बदले उनका लोप करनेका प्रयत्न करती है तब समझ लेना चाहिए कि अब उसका प्रताप धीरे धीरे अस्त होनेको अग्रसर हो रहा है। अपने पक्षको सर्वथा दोष-शून्य मान कर दूसरोंके अवगुणोंको देखते फिरना यही टेव मनुष्यके सब अवगुणोंकी जड़ है। इसी भाँति धार्मिक और सामाजिक विषयोंमें पक्षपात और हठधर्म समय पाने पर बहुत दुःख-दायक हो जाता है।

कई मनुष्यकी बातचीतको सुन कर यह विदित होता है कि मानों राजनीतिक कार्योंमें पक्षपात होना नैसर्गिक है। ऐसे मनुष्य समझते हैं कि न्याय और सत्य केवल एक ही पक्षमें विद्यमान हैं, दूसरा पक्ष इनसे सर्वथा शून्य है। बस ऐसा मान कर ही ये लोग अपने प्रतिपक्षियों पर निर्दयताके प्रहार करने लगते हैं। केवल इतना ही नहीं; किन्तु असत्यका विध्वंस कर देना अपना धार्मिक कर्तव्य समझ कर उसके निराकरण करनेके लिए रक्त बहानेमें ये लोग

पुण्य समझते हैं। अंध-श्रद्धाका इससे बढ़कर और क्या उदाहरण होगा ? लोग प्रतिदिन देखते हैं कि प्रत्येक वस्तुमें दो धर्म मौजूद हैं। शक्कर गुणकारी और अवगुणकारी दोनों हो सकती है। परन्तु इतना जानने पर भी स्वार्थ-पूर्ण विषयों पर विचार करते समय लोग आँख मींच कर अपने पक्षके अंधभक्त बन जाते हैं। विरोधियोंका मत कितने अंशों तक सत्य है यदि इस बातके जाननेका प्रयत्न किया जाय तो सचमुच बड़ा लाभ हो।

किसी विशेष पक्षका ग्रहण मनुष्य किस प्रकार कर लेते हैं यदि इस बातका पता लगाया जाय तो उसके द्वारा बुद्धिमान् मनुष्योंको कई शिक्षायें ग्रहण करनेका अवसर मिल सकता है। देखो, प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रश्नका विवेचन करते समय सदैव दो पक्षें रहा करती हैं। इतना ही नहीं इनमेंसे कई प्रश्नोंके ऊपर तो सदैव दो प्रतिकूल मत होते आये हैं। दो भिन्न भिन्न मतको पाकर कई मनुष्य अपने स्वाभाविक झुकावके कारण इन दोनोंमेंसे किसी एक मतको ग्रहण कर लेते हैं। विचारके बदले केवल मानसिक झुकावके कारण पक्षको ग्रहण कर लिया करते हैं, जिस भाँति बचपनमें खेल खेलते समय वे बाजी बद लेते थे। जन-साधारणका अधिकांश भाग परम्परागत अंध-श्रद्धाके कारण अपने बाप-दादोंके मतका अनुसरण करता है। हजारों मनुष्य स्वार्थके वशीभूत हो जिस पक्षमें उनके उद्देश्यकी पूर्ती होती दिखाई देती है उसीमें लुढ़क जाते हैं। कभी कभी मनुष्य अपने मित्रोंकी इच्छानुसार ही अपने विचारोंको स्थिर कर उन्हींकी हाँमें हाँ मिला देते हैं। जाँच करनेसे विदित होगा कि अधिकांश मनुष्य अपने जीवन भर किसी दूसरे दृढ़ सिद्धान्तवाले व्यवहार-कुशल मनुष्यके हाथकी कठ-पुतली बने रहते हैं।

कई मनुष्योंने ज्यों ही देखा कि वे आपसे कई मुख्य विषयोंमें सहमत हो सकते हैं त्यों ही वे आपकी पक्षमें खिंच आते हैं। इस बातका वे विशेष विचार नहीं करते कि उनमें और आपमें किन किन बातोंमें मतभेद है। लोक-मतके डिंकर कई महात्मा ऐसे भी हैं जो केवल लोगोंके मुँहको और देख कर ही अपने पक्षको स्थिर कर लेते हैं। यदि चार मनुष्योंने प्रकाशित कर दिया कि अमुक साहबके विचार अमुक प्रकारके हैं कि बस हो चुका। ये लोग सोचते हैं कि अब यदि इन्होंने करवट बदली तो कितनी लोक-हँसाई होगी। निदान भिन्न भिन्न प्रकृति और योग्यताके मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारसे पक्षपात द्वारा अधिकृत हो सम्मिलित बलको भ्रष्ट करनेका निन्दनीय उद्योग किया करते हैं।

इसी प्रकार यदि तड़ोंके बनावटकी ओर विचार किया जाय तो मनुष्यों-के सिद्धान्तोंकी पोचताको देख कर हर-एक विचारशील मनुष्यको हँसी आये बिना न रहेगी। इसके साथ-ही-साथ यदि कोई मनुष्य इस ढूँढ़-खोज-से शिक्षा ग्रहण करना चाहे तो वह अपने मानसिक विकारोंको काबूमें रखने और दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करनेके उत्तम गुणको भी सरलतासे सीख सकता है। देखो तो सही तड़ और पक्ष कैसी विटम्बनायें हैं—सिद्धांत और दीर्घ विचारसे तो वे बहुधा शून्य ही रहती हैं। उन व्यक्तियोंकी भी मूर्खताका कहीं ठिकाना है जो तड़ोंके आपसी पक्षपातको न्याय और सत्य समझ आपसी ईर्षा और द्वेषको पुष्ट करते हैं। यदि लोगोंकी क्षणिक बुद्धिकी ओर सहानुभूति-पूर्ण हृदयसे देखा जाय तो दूसरोंके हठधर्म पर हमें जो क्रोध हो आता है वह शीघ्र शमन किया जा सकता है। तत्ववेत्ता पास्कर साहबका कथन है कि "उन लोगोंकी ओर तो देखो जिनका हृदय शरीरके अंधे और अपाहिजोंकी ओर देख दयासे उमड़ उठता है। अपरिपक्व अथवा व्याधि-युक्त मानसिक शक्तिवाले, हृदयके अंधे, बुद्धि-रोगियोंको देख यदि यही मनुष्य उनके प्रति निठुरताका व्यवहार करे

तो कितना आश्चर्य है। निस्संदेह लोगोंके इस भ्रम-पूर्ण बर्तावका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। मुझे तो यह विदित होता है कि लँगडे पर लोग जो दया प्रकाशित करते हैं इसका कारण यह है कि वह करुणा-पूरित शब्दोंमें अपनी कमीको स्वीकार करता है। मूर्ख और हठग्राही मनुष्यको झिड़की इस लिए सहना पड़ती है कि वह अपनी भूलोंको स्वीकार करनेके बदले सब बुद्धिमानोंको मूर्ख ठहरानेका दुस्साहस करने लगता है। यदि मूर्ख और पंगु मनुष्यके व्यवहारमें इतना अंतर न हो तो दोनों ही बुद्धिमानोंकी दयाके पात्र बन जावें। स्मरण रहे कि यदि मूर्ख मनुष्य अपने हठधर्मको न त्यागे तो सज्जन अपनी सज्जनताको क्यों छोड़े? अत एव हमारा कर्तव्य है कि मूर्खोंकी प्रकृतिको समझ उन पर दया प्रकाशित करें। यदि मान लिया जाय कि शारीरिक अंग-विहीनता और मानसिक हठधर्म एक ही प्रकारकी उपाधियाँ है तो विदित होगा कि जिस भाँति बधिर मनुष्य अपने मानसिक विचारोंके अनुकूल बातोंको तो सरलतासे सुन लेता है,परन्तु दूसरी बातोंको सुननेके लिए सचमुच बहिरा ही रहता है उसी भाँति अपने हठधर्म और पक्षपातसे पीड़ित मनुष्य केवल अपने विचारोंकी पुष्टि करनेवाले वचनोंको ही सुन सकते हैं, उन्हीं पर विचार कर सकते हैं और उन्हींका आदर कर सकते हैं। जिस भाँति कोई सहृदय मनुष्य बहिरों पर क्रोध प्रकाशित नहीं करता उसी प्रकार बुद्धिमानोंको भी मूर्खोंसे द्वेष करनेकी गुंजायश नहीं है।"

पक्षपातके रोगियोंसे कटुक व्यवहार करनेमें अपने तईं संभालना यदि प्रत्येक विचारशील मनुष्यका कर्तव्य है तो उसके साथ ही अपने हृदयको पक्षपातसे बचानेका सावधानी-पूर्वक प्रयत्न करते रहना भी उसका कर्तव्य है। मनुष्यमें एक प्राकृतिक अवगुण यह है कि वह अपने दोषोंको नहीं देख सकता। इसी लिए बड़े बड़े विद्वान् लोग भी वास्तवमें पक्षपातके दास होते हुए अपने तईं न्याय और विवेककी मूर्त्ति समझ बैठते हैं।

अपने प्रतिपक्षियोंको देखते ही मनुष्य सत्य-प्रेमकी साक्षी दे-दे कर पक्षपातके अवगुणोंका गान करने लगते हैं मानों इस कथनसे वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनके हृदयमें केवल सत्य-प्रेमके लिए ही स्थान है। परन्तु विचार-पूर्वक देखा जाय तो पूर्ण निष्पक्ष होनेका दावा करना मूर्खता है। साधारण मनुष्य बहुधा अपने मानसिक विकारोंका दास है। अपने हठधर्मोंका वह कैदी है। वह केवल विक्षिप्तकी नाईं अपने जेलरको सम्मानार्थ नियुक्त किये अंगरक्षक मान रहा है।

उपर्युक्त विवेचनसे पाठक समझेंगे कि शायद पक्षपात सर्वथा निंदनीय वस्तु ही है अथवा मध्यवर्ती मार्गका अनुसरण करना सर्वथा ही प्रशंसनीय है। नहीं नहीं, ऐसा नहीं है। सत्य-प्रेमसे प्रेरित हो प्रमाणोंके आधार दीर्घ विवेचन और मनन करने पर जो विचार तुमने स्थिर किये हों उनको दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण करना और अवसर पड़ने पर अपनी शक्ति-भर न्याय-पूर्ण साधनों द्वारा उनकी रक्षा करना—यही प्रत्येक विचारशील मनुष्यका कर्तव्य है। निन्दनीय वस्तु यदि कोई है तो वही अकर्मण्यता। अंधपरम्पराके दास होकर विचार-शक्तिको निरुपयोगी बना देना, बस यही अपराध है। साधारणतः प्रत्येक कार्यमें दो पक्षें रहा करती हैं और उन दोनोंका कुछ-न-कुछ समर्थन किया ही जा सकता है। परन्तु यदि आलस्यके वशीभूत हो मनुष्य केवल इतना ही कह कर संतुष्ट हो जाय कि उभय पक्षमें सत्यांश मौजूद है तो वह निन्दनीय ही होगा। दोनों बाजुओंका समर्थन करके दिखा देना और केवल गरजनेवाले न बन कर कार्य-क्षेत्रमें उतर पड़ना यह सचमुच प्रशंसनीय है।

वृद्धि, ह्रास, उन्नति और अवनति—यह तो प्रकृति की लीलायें हैं। सब लोग जानते हैं कि संसारके चराचर प्राणी तथा सब जड़ और चैतन्य पदार्थ समयानुकूल घटते और बढ़ते हैं। परन्तु पाठकोंको यह जान कर शायद आश्चर्य हो कि जाति और राष्ट्र तथा इनकी

संस्थाओंके ऊपर भी कालका आधिपत्य है । व्यक्ति और इनमें केवल अंतर इतना ही है कि मनुष्यका जीवन-काल यदि सौ बरस है तो इनकी मुद्दत कई शताब्दियाँ हैं । और तो क्या, जिस भाँति समय समय पर मनुष्य रोगसे पीड़ित हो जाते हैं और योग्य उपायोंका अवलम्बन कर फिर चंगे और बलवान् हो जाते हैं उसी भाँति समाज भी समय समय पर रोगाक्रांत हो शिथिल हो जाते हैं और उपचारोंके द्वारा फिर भी शक्तिशाली बनाये जा सकते हैं । परन्तु स्मरण रहे कि इनके रोगी और चंगे होनेमें बरसों, नहीं नहीं, शताब्दियोंकी आवश्यकता होती है । निदान इस प्राकृतिक नियमको हृदय पर अंकित करके सामाजिक और राजनीतिक मामलोंमें कभी उतावली न करो । समाज और जातिकी उन्नति और अवनतिके प्रश्न बड़े ही गहन और समय-साध्य होते हैं । इनकी मीमांसा करते समय विचारोंकी प्रतिकूलताके कारण अपने प्रतिपक्षियों पर निरर्थक दोषारोपण करना अयोग्य है । गत शताब्दियोंके बड़े बड़े राज-नीतिक ऋषियोंकी भविष्यद्वाणीकी परवा न करके सामाजिक तंत्र आज भी समयानुकूल प्रवृत्ति कर रहा है । इसके लिए भयभीत होकर निराश हो जाना अवनतिका कारण है ।

सामाजिक और राजनीतिक कार्योंमें मत-भेद होना और वाद-विवाद होते रहना ये ही तो स्वतंत्रताके लक्षण हैं । मतभेदको दूर करनेका प्रयत्न करना मानों व्यक्तिगत विचार-स्वातंत्र्यका गला घोंटना है । यथार्थमें मत-भेदको दूर करना इष्ट नहीं है; परन्तु उसका अनुचित उप-योग करना और उससे होनेवाले अनिष्टोंको रोकना यही कर्तव्य है । जब तक संसारका अस्तित्व कायम है और मनुष्योंकी प्रकृति और रुचि भिन्न भिन्न है तब तक इन प्रश्नों पर मतभेद होना अवश्यम्भावी है । यदि समुद्योगके लाभोंसे वंचित रहना सचमुच अनिष्टकर है तो मत-भेदके कारण आपसी विद्वेष और फूटको कभी न फैलने दो । यदि कोई सामा-

जिक कार्योंसे इस लिए विरागी हो जाय कि इन कार्योंमें मत-भेद होनेसे वैमनस्य बढ़ता है तो यह भी नादानी ही है। यदि बुद्धिमान् मनुष्य इन कार्योंसे हाथ खींच ले और केवल मूर्खोंके भरोसे ही ये छोड़ दिये जायँ तो कितना अनर्थ होगा! पक्षपात-जन्य वैमनस्यका उपाय आलस्य अथवा वैराग्य नहीं हो सकता। इसका एक मात्र उपाय यदि है तो वह सहानुभूति और हृदयकी गंभीरता ही है। बहुधा देखा जाता है कि विद्वानोंकी मंडलीमें मत-भेद होने पर भी उनका चित्त जरा भी मैला नहीं होता।

यथार्थमें प्रश्न यह है कि पक्षपात-जन्य दोषोंका निवारण किस भाँति किया जाय। निस्संदेह जिन मनुष्योंका चरित्र उन्नत नहीं है, जिन्होंने अपने कर्तव्य-कर्मके सिद्धान्तोंको स्थिर नहीं किया है और जिनके निम्न श्रेणीके मानसिक विकार शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते हैं ऐसे पुरुष पक्षपातके अंधभक्त हो चाहे जैसा अनर्थ करनेके लिए तत्पर रहते हैं। इसके विरुद्ध उत्तम जन अपने पक्षपातके द्वारा भी सत्कार्यका सम्पादन करते हैं। वे अपने साथियों और सहवासियोंके चरित्रको उन्नत करनेमें इसी बहाने निमग्न रहते हैं। पक्षपातके तीव्र आवेशमें आकर भी वे सत्य-प्रेमसे च्युत नहीं होते और मनुष्य-जातिके अज्ञान और दृढ़-धर्मके ऊपर वे सदैव दया प्रकाशित करते हैं। मनुष्योंके हृदयकी क्षुद्रताको दूर करनेवाली और प्रेम तथा सहानुभूतिके साम्राज्यको विस्तृत करनेवाली शिक्षाकी आयोजना करना यही पक्षपात और अंध-श्रद्धाको मेटनेका सच्चा उपाय है।

भेंट अथवा मुलाकात।

पिछले पाठमें बताया गया है कि प्रार्थना-पत्रोंका उत्तर देते समय व्यवसाय-संचालकोंको कभी कभी उम्मेदवारोंसे साक्षात् भेंट करनेकी आवश्यकता आ पड़ती है। मुलाकातका व्यवसायमें केवल इतना ही उपयोग है ऐसा न समझना चाहिए। स्मरण रहे कि हृदयस्थ विचारोंको प्रकाशित करनेके केवल दो ही साधन हैं। साधारण मनुष्य अपने मनकी बातको या तो बातचीतके जरिये अथवा लेख द्वारा प्रकाशित करते हैं। दैनिक जीवनकी साधारण बातें बहुधा मौखिक शब्दों द्वारा बताई जाती हैं। इन बातोंके लिए कागज-कलम दबाये फिरना मानों अपनी हँसी करना है। मनुष्य यदि अधिक अड़चन उठाये बिना एक दूसरोंसे मिल सकते हों तो व्यवसायकी ऐसी बातें, जिनमें केवल दूसरोंके विचारोंसे परिचित होनेकी आवश्यकता है, बहुधा मुलाकात द्वारा तय की जा सकती हैं। ऐसी बातें, जिनको कागज पर लिखे बिना उनके अर्थ पलट जानेकी सम्भावना है, निस्संदेह लेख द्वारा प्रकाशित करनी चाहिए। यदि मुलाकात करनेमें बहुत समय लगे अथवा अधिक खर्चा पड़े और मामला साधारण हो तो चिट्ठी-पत्रीके द्वारा बात निपटली जाय। परन्तु व्यवसाय-सम्बन्धमें कई बातें ऐसी हैं जिनकी सिद्धि साक्षात् भेंटके द्वारा यदि एक ही बारमें की जा सकती है तो लेखके द्वारा उसीके लिए संभव है कि छः महीने लग जायँ और फिर भी वह कार्य सिद्ध न हो।

बातचीतके द्वारा अपने विचारोंको प्रकाशित करनेकी क्रिया प्राकृतिक है। प्रकृतिने मनुष्य-शरीरमें शब्दोच्चारण करनेके उपयुक्त यंत्र-समूहकी आयोजना रच कर दी है। समाज मनुष्यको केवल इस यंत्रका उपयोग करना सिखाता है। बातचीतके द्वारा शिशु बचपनके पाँच या सात वर्षोंमें जितना ज्ञान प्राप्त कर लेता है उतना वह जीवनके शेष

मासमें भी शायद ही प्राप्त कर सकता है। लेख-प्रणालीमें मनुष्यकी कारीगरीका भाग अधिक है। अक्षर-संकेतोंकी नियुक्ति, भाषा और व्याकरणका सम्बन्ध और लेखन-क्रियाके नियमोंकी व्यवस्था ये सामाजिक टकसालके सिक्के हैं। इनको भली भाँति सीखनेके लिए बीसों वर्ष परिश्रमकी आवश्यकता पड़ती है। मनुष्यके हृदयमें जितने सूक्ष्म और गूढ़ भाव हैं उनको हम लेखकी अपेक्षा शब्दों और शारीरिक अवयवोंकी आकृतिके द्वारा सरलतासे प्रकाश कर सकते हैं। शकुन्तलाके मोहित नयनोंने दुष्यन्तके प्रति जो प्रेम-भाव प्रगट किया था उसको चित्रित करनेमें महाकवि कालिदासकी प्रतिभा-पूर्ण लेखनी भी व्यथित हो पड़ती है। सारांश यह है कि बातचीतकी अपेक्षा लेखमें चतुराई प्राप्त करना अधिक कष्ट-साध्य है।

लेखकी अपेक्षा बातचीतके द्वारा अपने विचारोंको प्रगट करना यद्यपि सरल है तो भी इससे यह न समझ लेना चाहिए कि इसमें चतुराई प्राप्त करनेके लिए कुछ भी श्रम न चाहना पड़ेगा। नहीं नहीं, शब्दों पर अधिकार प्राप्त कर लेनेके अतिरिक्त दूसरेके भावोंको परखनेकी कठिन-कलामें अभ्यस्त होना पड़ेगा। इस विषयको लोग बहुधा अवहेलनाकी दृष्टिसे देखते हैं। यही कारण है कि जीवनके व्यवहारोंमें जहाँ चार आदमियोंमें बातचीत करनेका मौका आया कि लोग या तो उसे टाल देते हैं अथवा वहाँ गूँगेकी नाईं बैठे रहते हैं। जीवनके व्यापारोंमें बातचीतकी चतुराईका इतना महत्त्व देख कौन विचारशील व्यक्ति इसको प्राप्त करनेमें प्रयत्नशील न होगा?

भेंट और मुलाकातमें थोड़ासा अन्तर है। भेंटमें प्रेमका अंश विद्यमान रहता है, हृदयका हृदयसे निःसंकोच मिलन होता है और बाह्य शिष्टाचार और आडम्बरकी उसमें आवश्यकता नहीं रहती। मुलाकात चाहे परिचित व्यक्तिसे की जाय अथवा अपरिचितसे ही; इसमें शिष्टाचारके नियमोंका यथाविधि पालन करना पड़ता है। मि और कुटुम्बि-

योंके साथ जो गपशप की जाती है उसमें और व्यवसाय-सम्बन्ध अथवा सामाजिक पंचायतोंमें चार भले आदमियोंके साथ बैठ मनुष्य जो बातचीत करता है उसमें बड़ा अन्तर है। मित्र-समूहके बीच मनुष्य असम्बद्ध विषयोंको भले ही घसीट लावे, अपने विषयको स्पष्ट करनेके लिए कैसे ही प्रमाण क्यों न दे उसको हानि पहुँचनेकी सम्भावना नहीं है। परन्तु मुलाकातमें दूसरोंके चित्तको व्यथित करनेवाली बात भी बोलना पाप समझा जाता है। अपने पदकी योग्यताके लिहाजसे शिष्टाचारके नियमों-को पालन करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है।

इसमें संदेह नहीं कि कार्य-सिद्धिके लिए यदि कलम अधिक विश्वस्त साधन समझा जाय तो जीभ और कंठ उसी कार्यके लिए अधिक तीक्ष्ण और स्वल्प समय-साध्य साधन हैं। मनुष्य कितना ही गूढ़-हृदय क्यों न हो बातचीतमें उसके मनका अभर थोडा बहुत प्रकाशित हो ही जाता है। साक्षात् बातचीतकी यही विशेषता है। शब्दोंके अतिरिक्त आमने सामने मिलते समय मनुष्यके मुखकी आकृति, शारीरिक अंगोंके हाव-भाव और शब्द-ध्वनिके द्वारा बहुतसे गूढ भाव प्रकाशित हो जाते हैं। सारांश यह है कि मनुष्य यदि चाहे तो मुलाकातके द्वारा अपने उद्देश्यका साधन भली भाँति कर सकता है। परन्तु स्मरण रहे कि मुलाकातें उपयोगी हो-नेके साथ साथ जुएके दावकी नाईं अनिश्चित और भ्रम-पूर्ण भी हैं। कई मनुष्य इन्हें खेलके समान समझते हैं और उन्हें अपनी समझके उपयुक्त फल भी मिलता है। मुलाकातसे केवल वही मनुष्य पूरा लाभ उठा सकता है जो दूरदर्शी है।

किसी खास विषय पर जब कई व्यक्तियोंके विचार भिन्न भिन्न होते हैं और कार्यकी सफलताके लिए इन सब लोगोंकी राय एकसी होनेकी आवश्यकता पड़ती है तब उस मामलेको तय करनेके लिए यदि ये लोग आपसमें मिल कर विचार करें तो सुभीता होगा। वादी प्रतिवादी मुकाबिले

आकर अपने अपने मनका समर्थन करें और देख लें कि उनके विचारोंमें कितना अंतर है। घंटे दो घंटेमें ही सारा काम निपट जायगा। इसी बातको सुलझानेके लिए यदि लेखका सहारा लिया जाय तो कितना समय लगेगा? अपने प्रतिपक्षीका मत पलटाने और उसके हृदयमें अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न करानेका उत्तम उपाय उसके साथ एकान्तमें बातचीत करना है।

यदि तुम्हारा सहयोगी किसी ऐसे विषयका आश्रय लेना चाहता है जिसको कालान्तरमें सुलझाना कठिन हो जायगा और यदि तुम्हें उसको ऐसा करनेसे रोकना इष्ट प्रतीत हो तो तुरंत ही साक्षात् भेंट करके उसको उसकी भूलें समझा दो। ऐसा करनेके पहले अपने चित्तमें यह स्थिर कर लेना आवश्यक है कि उस विषयको छेड़ने पर विपक्षीकी ओरसे तुम्हें किस भाँतिका उत्तर प्राप्त होगा और तुम उसका क्या प्रत्युत्तर दोगे। यदि वाद-विवादका ढाँचा अपने चित्तमें पहलेसे न खींच लिया जाय तो साक्षात् बातचीतमें थोड़ी देरके पश्चात् ही तुम्हारी सारी पूँजी खर्च हो जायगी और तुम्हें अपने प्रतिपक्षीके सामने नीची आँखें करना पड़ेंगी। अत एव अपनी कल्पना-शक्तिके सहारे विषयसे सम्बंध रखनेवाले प्रश्नोत्तरोंको अपने हृदयमें एकत्र कर लो। बातचीतमें अपने प्रमाणोंको भली-भाँति समझा कर प्रतिवादीको उस विषय पर मनन करनेके लिए बाध्य करो। स्मरण रहे कि मामला कागज पर पहुँचनेके पहले ही यह सब कार्रवाई हो जानी चाहिए। लेखकी बातको बदलना बहुत कठिन है। बातचीत करते समय इस ढंगसे काम लिया जाय ताकि प्रतिपक्षी तुम्हारी बातोंसे चिढ़ कर उसे वाग्जाल न समझ बैठे। यदि ऐसा हुआ तो मुलाकातका सारा उद्देश्य निष्फल हो जायगा।

व्यवसाय-संचालकोंको उन विषयोंमें विशेष सावधान रहना चाहिए जिनके विषयमें वे उस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्यान्य व्यक्तियोंके

-अभिप्रायोंको समझे बिना ही अपने मन्तव्य और कार्य-प्रणालीको स्थिर कर सकते हों। ठीक इन्हीं विषयोंमें संचालकोंको भविष्यमें कष्ट उठाना पड़ता है। लोगोंकी राय लिये बिना किसी कामके करनेमें आज तुम्हें भले ही सुभीता जान पड़े; परंतु कल तुम्हें यही बात बहुत अखरेगी। लोकमतका प्राबल्य होने पर अपने मन्तव्योंको बदलनेके लिए तुम्हें लाचार होना पड़ेगा। साथ ही लोगोंमें असन्तोष बढ़ानेका पाप तुम्हारे ही सिर चढ़ेगा। अत एव ऐसे मामलोंमें लोकमतको निश्चित करके किसी कार्य-प्रणालीका अवलम्बन करना ही श्रेष्ठ है। विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले लोगोंको एकत्रित करके अपने सामने उनके विचार प्रकाशित करके उन पर मनन करो। यह देखो कि तुम्हारे और उनके विचारोंमें कितना अंतर है और निर्धारित विषय पर लोकमतका कैसा प्रभाव पड़ेगा। कार्यक्षेत्र जितना विस्तृत हो लोगोंकी इच्छाओं और आकांक्षाओंसे परिचित होनेकी उतनी ही अधिक आवश्यकता है। कोई व्यवसाय हो संचालकोंको स्मरण रखना चाहिए कि लोकमतकी अवहेलना करनेसे हमेशा हानि ही होती है। इसके अतिरिक्त व्यवसायके भिन्न भिन्न अंगोंमें जो व्यक्ति सम्मिलित हैं उनमेंसे निरुत्साहियोंको उत्साह दिलाने, आगा-पीछा करनेवालोंके चित्त दृढ़ करने और कार्यको आगे बढ़ानेके लिए व्यवसाय-संचालकोंको समय समय पर अपने अधीन कर्मचारियोंसे एकान्तमें मिल कर बात-चीत करनी होगी।

अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए दूसरोंसे मिलना जितना आवश्यक है उतना ही दूसरे मनुष्योंको भेंटका अवसर देना भी है। स्वार्थसे प्रेरित होकर जो व्यक्ति तुम्हारे पास आवे और तुम्हारा समय कितना ही बहुमूल्य क्यों न हो, तथा तुम यह भी जानते होओ कि इनके साथ बातचीत करना निरर्थक ही होगा तो भी तुम्हें इनको समय देना पड़ेगा। कई लोग यह सोचते हैं कि जब तक साक्षात् भेंट न होले तब तक उनके प्रार्थना-पत्र पर शायद ध्यान न दिया जायगा। साथ-ही-साथ उनका यह भी दृढ़-

विश्वास है कि यदि उन्हें भेंट करनेका अवसर दिया जाय तो वे तुम्हारे आक्षेपोंका भली भाँति उत्तर दे सकेंगे। मुलाकातके इन शौकीनोंको यदि रूखा उत्तर दे दिया जाय तो इनकी असंतुष्टि बढ़ेगी। अत एव उनके मनकी झूठी भावनाको निकाल देना ही योग्य है।

यदि मनुष्यको यह विश्वास हो कि उसके मन्तव्य योग्य और न्यायपूर्ण हैं; परन्तु उसे अपने प्रतिपक्षीके सामने अपने कारण प्रकाशित करनेमें यदि संकोच मालूम हो तो उसे ऐसी अवस्थामें भेंट ग्रहण न करना चाहिए। पूछे जाने पर कुछ-न-कुछ कारण तो अवश्य बताना ही पड़ता है। निदान वाद-विवाद और असंतोषके सिवाय भेंटका और क्या फल हो सकता है? सत्य कारणोंके बदले झूठोंकी आयोजना करते फिरना और हठधर्मका लांछन सिर पर लेना बुद्धिमानी नहीं है।

बकवादी और गरम प्रकृतिवाले व्यक्तियोंके साथ बातचीत अथवा व्यवहार करते समय सावधान रहना चाहिए। ऐसे मनुष्योंसे पार पाना कठिन है; क्योंकि वे दूसरोंकी बातको सुनी अनसुनी करके अपना ही गीत गाया करते हैं। ज्यों ही इनने एक बार बातचीत प्रारम्भ की कि फिर जब तक ये स्पष्ट शब्दोंमें न छेड़ दिये जायँ तब तक अपना ही राग आलापते जायँगे। सुननेवालेको उनका पचड़ा पसंद है या नहीं, उनके मन्तव्योंको वह स्वीकार कर रहा है अथवा नहीं इस बातकी उन्हें जरा भी परवा नहीं है। तुम तो शिष्टाचारका विचार कर उन्हें स्पष्ट शब्दोंसे रोकनेमें हिचकिचाओ और वे तुम्हें निर्बोध शिशुकी नाई समझ तुम्हारे सामने अपनी वाक्पटुता प्रकाशित करते जायँ। यदि एक-बार उन्होंने अपनी कथा पूर्ण कर पाई और आपने सिर न हिलाया तो समझ लीजिए कि दुबाराके लिए ये आपके पाँव आप हीके गले फँसानेके लिए तैयार हो जायँगे। यदि फजीहतसे बचना है तो ऐसे महात्माओंको दूरसे ही नमस्कार करना चाहिए।

किसी विषयको सुलझानेके लिए यदि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिके पास डेप्यूटेशन ले जाना पड़े तो किसी एक व्यक्तिको अपना प्रतिनिधि बनानेके पहले सब मेम्बरोंको चाहिए कि एकमतको निर्धारित कर लें। ऐसा न करनेसे आपसी दुलत्तीका मौका आ जायगा। प्रतिनिधिके विचार कुछ और मेम्बरोंके कुछ और ही होंगे। ऐसे समय या तो अपनी इच्छाके विरुद्ध कार्रवाईसे सहमत होना पड़ता है अथवा विरोधके अगुआ बननेका अपराध सिर पर लेना पड़ता है। अत एव ऐसे समय अग्रसोची बन कर सब जनोंको एकत्र कर उनकी राय लेना हितकारी है।

व्यवसायमें मुलाकातका इतना ही उपयोग किया जाय जितने बिना काम न चल सकता हो। यदि मनुष्य उसे साधारण वस्तु समझ उसका अत्यधिक उपयोग करे तो उसको लाभके बदले हानिकी संभावना ही अधिक है। तुच्छसी बात हुई कि किसी भले मनुष्यके पास अपना दुखड़ा रोनेके लिए जा खड़े होना सभ्योचित नहीं है। क्या कहना है, किस भाँति कहना होगा, दूसरोंको कष्ट दिये बिना ही काम चल सकता है अथवा नहीं इत्यादि प्रश्नोंको विचारनेका कष्ट भी उठाना पड़ता है। जिनमें पुरुषार्थकी मात्रा कम है, बेकार रहनेके कारण जिन्हें समय बोझकी नाईं प्रतीत होता है ऐसे मनुष्य मुलाकातको बहुधा मनोरंजनकी वस्तु समझ उसका दुरुपयोग करते हैं। इतना ही नहीं, यदि ऐसे मनुष्योंको उनका ऐब सुझाया जाय तो वे हठ-पूर्वक अपने तईं निर्दोष सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे। नाना प्रकारके दृष्टांत देकर अपनी नटखटको ये लोग भले ही छिपा लें; परन्तु सच पूछो तो इनकी सारी दौड़-धूप व्यर्थ है। दूसरोंको निरर्थक कष्ट देना, उनके बहुमूल्य समयको अपनी असम्बद्ध बातों द्वारा नष्ट करना और सार्थक प्रश्नोंके पूछे जानेपर मुँह बाकर रह जानेके सिवाय बतलाइए इनसे और क्या बन पड़ता है? परन्तु ये बेचारे क्या करें? इन्हें तो भेंट करनेका अफीमचीका-

सा नशा पड़ गया है। जाने-आनेमें अपना और दूसरोंका समय नष्ट करनेसे कोई मतलब सधे अथवा न सधे, विषय पर मनन करके उसकी कार्य-प्रणाली और साधनोंको ढूँढनेके लिए सिर खर्च करनेका प्रयास उठाना इन्हें स्वीकार ही नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि दूसरोंको कष्ट देनेके पहले यदि तुम स्वतः विचार करनेका प्रयास न करोगे तो कितनी ही दौड़-धूप क्यों न करो सब व्यर्थ होगी।

भेंटके द्वारा यदि किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करनेका ही अभिप्राय हो तो उस विषयके बारेमें पहलेसे सोच-विचार करनेकी विशेष आवश्यकता ही नहीं पड़ती। विषयका जिक्र छेड़ कर जो कुछ उसके बारेमें कहा जाय उसे गंभीरता-पूर्वक सुनते जाओ। बीचमें ऐसे प्रश्न होते जाना चाहिए जिनके द्वारा उस विषयके भिन्न भिन्न अंगोंका विवरण होता चला जाय। प्रश्न करनेकी चतुराई बस उस समय आवश्यक है। यदि प्रश्न चतुराईसे किये जायँ तो प्रश्न-कर्त्ताको उस विषयका ज्ञान है अथवा नहीं, वह तुम्हारी परीक्षा ले रहा है अथवा तुम्हारा शिष्य बन तुमसे ज्ञान प्राप्त कर रहा है यह ढूँढना भी मुश्किल हो जायगा। इसके विरुद्ध यदि किसी विवाद-ग्रस्त विषयको निपटानेके अभिप्रायसे ही चार आदमियोंमें बोलना पड़े तो विषय पर अधिकार हुए बिना कभी न बोलो। इसी भाँति झगड़ेको निपटानेकी गरजसे यदि विवाद सुननेके लिए आमन्त्रित किये जाओ तो उस विषयकी अच्छी जानकारी हुए बिना आमंत्रण-रक्षा करना ठीक न होगा। ऐसे अवसरको टाल देना ही बुद्धिमानी है।

दूसरोंके विचारोंको इच्छित दिशामें मोड़ देना, अपने विचार और कार्योंसे सहानुभूति प्रगट करनेके लिए उन्हें बाध्य करना, यही भेंटका अभिप्राय है। बातचीतके द्वारा दूसरोंको अपना सहायक बनानेवाले और उनके विचारोंको नष्ट-भ्रष्ट कर उनके मगज पर अधिकार प्राप्त करनेवाले मनुष्य इने-गिने ही होते हैं। इस विषयमें सफलता प्राप्त करनेके लिए

केवल ज्ञान और गौरव ही नहीं, हाजिर जवाबी और चतुराईका भी प्रयोजन रहता है। स्मरण रहे कि अपने विचारोंको पलटनेके लिए अपनी शक्तिभर कोई तैयार नहीं रहता। कभी कभी तो मनुष्य बातके पीछे संसारके इससे इष्ट पदार्थोंको जलाञ्जलि देनेके लिए भी तैयार रहता है। जब तुम अपने प्रतिपक्षी पर अपने तर्क-रूप बाणोंका प्रहार करोगे तब क्या वह अपने तईं बचानेका प्रयत्न न करेगा ? यदि वह इसमें सफल न हुआ तो फिर वह व्याकुल हो भागनेके लिए मार्ग ढूँढेगा। निदान जिस ओर वह भागे तुम्हारा कर्तव्य है कि उसको उसी तरफसे घेरो। यदि उसे एक भी मार्ग मिल गया तो समझ लेना कि वह तुम्हारे अधिकारसे परे हो गया। कई लोग सोचते हैं कि प्रत्येक बातके सम्बन्धमें ' हाँ अथवा नहीं ' इन दो बातोंके अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। यह इनकी भूल है। ऐसा विचारना इनकी व्यवहार-सम्बन्धी अनभिज्ञताका सूचक है। वे नहीं जानते कि मनुष्य अपने विचारोंकी रक्षा अपने धनकी नाई करता है। जिस भाँति तुम्हारा अभिप्राय अपने प्रतिपक्षीको अपने अनुकूल बनानेका है उसी भाँति वह भी तो तुम्हारे ऊपर अधिकार प्राप्त करना चाहता है। अत एव इस द्वन्द्व-युद्धमें जिस पक्षने जरा भी असावधानता प्रकट की उसीकी बाजी मारी जाती है।

व्यवसाय-सम्बन्धी कई विषयोंका निपटारा करनेके लिए उभय पक्षका जो सम्मेलन होता है उसमें कभी कभी एक पक्षकी स्वतंत्रता दूसरीकी अपेक्षा अधिक होती है। इस पक्षके लोग यदि जीतें तो ठीक ही है; परन्तु यदि हारें तो भी उन्हें कोई विशेष हानिकी संभावना नहीं रहती। अपने कथनको सत्य प्रमाणित करनेके लिए वे मनमानी साक्षी दे सकते हैं। इसके विपरीत दूसरी पक्षवाले अपनी जिम्मेदारीके लिहाजसे तथा अपने गुप्त भावोंके प्रगट हो जानेके डरसे अपने मतको खुलासा प्रगट नहीं कर सकते। इन्हें अपने प्रतिपक्षियोंकी बातको मानना भी इष्ट नहीं होता। अपनी निर्गीत

पालिमांके विरुद्ध किसी कामको ये सहसा मंजूर नहीं कर सकते। इतना होने पर भी लोगोंमें अपने तईं निष्पक्ष प्रगट करनेसे इन्हें लाभ प्रतीत होता है। शासन-विभागके किसी उच्च कर्मचारीके पास लोग जब डेप्युटेशन लेकर जाते हैं उस समय ठीक यही दृश्य होता है। मेम्बरोंकी बातको ये अफसर ऐसे गम्भीर-भावसे सुनते हैं मानों वे उनकी बातको अक्षरशः मान लेंगे। परन्तु घंटे भरके वाद-विवादका फल कुछ भी नजर नहीं आता। ये चतुर कर्मचारी मेम्बरोंको खूब बकने देते हैं। बीच बीचमें थोड़ेसे शब्द बोल कर ही ये मेम्बर महाशयोंको बिदा कर देते हैं। राज्य-शासनकी बात जाने दो। सामाजिक पंचायतों और आपसी व्यवहारमें भी कई बार ऐसे ही मौके आ जाते हैं। प्रतिपक्षियोंकी बातको बड़े गौरसे सुनना और उन्हें ऐसे उत्तर देना कि जिनमें उन्हें संतोष तो हो जाय, परन्तु वास्तवमें कुछ भी न मिले यही उस समयका कौशल है। स्मरण रहे कि ऐसे समय अपने उपर जो आपेक्ष किये जायँ उनका उत्तर देनेके सिवाय और कुछ न कहा जाय। संक्षेपसे उत्तर देते हुए अपनी शक्तिको धीरे धीरे खर्च किया जाय। ऐसे समय लम्बे-चौड़े व्याख्यानोंके देनेसे केवल हानि ही होगी। 'खूब सुनना और कम बोलना' इस नियमके अनुसार कार्य करनेसे बड़ा लाभ होगा।

मनुष्य कितना ही वाचाल और चतुर क्यों न हो, उसका निर्दिष्ट विषय पर चाहे पूर्ण अधिकार ही क्यों न हो, वाद-विवादके समय उसे अपने कुछ समर्थक अपनी ओर अवश्य रखना चाहिए। जब एक व्यक्तिको चारों ओरसे दस पाँच आदमी घेर लेते हैं और उसकी बातका खंडन करनेको तत्पर रहते हैं तब वह कितना ही गम्भीर क्यों न हो उसका साहस टूट जाता है। ऐसे समय यदि एक ही व्यक्ति उठ कर उसके पक्षका समर्थन कर दे तो उसके हृदयमें नवीन शक्तिका संचार हो जाता है। दूसरे, मनुष्य अपनी तर्क और युक्तियोंका श्रोताओं पर कैसा प्रभाव

पडा यह बात जाननेके लिए भी बडा उत्सुक रहता है। सहपक्षीके बिना इस उत्सुकताकी पूर्ति कौन करेगा ? इसके अतिरिक्त यदि विवादमें तुमने अपने पक्षका युक्ति-पूर्ण मंडन और विपक्षका खंडन भी किया, परन्तु यदि तुम अकेले हो तो विपक्षी केवल मुट्ठाठेलीके भरोसे ही तुम्हें चकचौंधिया देंगे। अत एव विवादके समय दो एक साथियोंको लिये रहना नीति-संगत है।

विवादको कार्योपयोगी बनानेके अभिप्रायसे प्रत्येक बैठकके अंतमें दोनों ओरसे विषयका जिस भाँति प्रतिपादन किया गया हो उसका संक्षिप्त ब्यौरा रजिस्टरमें लिखा जाना चाहिए। ऐसा करनेके लिए प्रौढ़ ध्यान-शक्तिके अतिरिक्त विषयके सारको निचोड़ उसे उपयुक्त शब्दोंमें प्रकाशित करनेकी योग्यता होनी चाहिए। परन्तु संचालकको इस कार्यके कष्टकी ओर ध्यान न देना चाहिए। ऐसा करनेसे कई लाभ है। प्रथम तो नियमानुकूल कार्रवाईको देख विपक्षी लोग धींगाधींगी मचानेसे बाज आवेंगे। दूसरे कार्रवाईके संक्षिप्त विवरण परसे भविष्यमें तुम्हें उस बातका इच्छित समय पर भली भाँति दिग्दर्शन हो जायगा। तीसरे विषयको आगे बढ़ानेमें अच्छी सुविधा होगी। इन लाभोंके अतिरिक्त और कई बाधायें भी इस कार्रवाईके करनेसे रुक सकेंगी।